कुछ सूचना !

भारतवर्षमें उपयोगी जैन ग्रन्थोंको प्रकाशित करने और सस्ते दामोंमें देनेके लिये इस कार्यालयने सैकड़ों ग्रन्थ और जैन धर्म सम्बन्धी रंगीन उत्तमोत्तम चित्रोंको प्रकाशित करके काफी ख्याति प्राप्त की है। कुछ कूप मंडूकोंको जो पब्लिकके नामसे धन लूट २ कर जमा करके अपना. अपने कुटम्बी और इष्टमित्रोंका स्वार्थ साधन कर रहे थे, खूब ही खटका है वे हमारे उत्तम प्रकाशनको देखकर घवड़ा गये हैं। अतएव कभी स्वयं और कभी अपने मित्रोंसे इस कार्यालयके मालिकोंपर मामला चलाते हैं, परन्तुकी सत्यकी विजय बराबर होती आई है वही हाल उनका हो रहा है।

हम अपने सम्माननीय ग्राहकोंसे पुनः निवेदन करते हैं किवे हमारी सुविधासे सदैव लाभ उठाते रहें। अर्थात सूचीपत्र सदैव देखा करें।

निवेदक—

दुलीचन्द परवार,

जिनवाणी-प्रचारक-कार्यालय,

१६१।१ हरीसन रोड, कलकत्ता।

प्रस्तावना ।

पाठक ! यह यथार्थमें आदिनाथ स्तोत्र है परन्तु ग्रन्थके आदिमें भक्तामर पद आनेसे भक्तामरहीके नामसे प्रसिद्ध है जैन समाजमें केवल भक्तामर ही नहीं सिन्दूर प्रकर, पार्श्वनाथ स्तोत्र, एकीभाव स्तोत्र, देवागम आदि भी ग्रंथारंभके प्रथम पदसे प्रसिद्ध हैं।

जैन धर्ममें ग्रन्थ बहुत हैं और मंत्र जंत्रके भी अत्यधिक ग्रन्थ हैं परन्तु सभी संप्रदायके जैनी भाइयोंमें भक्तामरका अति बाहुल्यतासे प्रचार है, उनकी इस ग्रन्थ पर ऐसी अद्वितीय भक्ति है जो संस्कृत तो क्या अच्छी तरह हिन्दी भी नहीं जानते और शब्दोंका ठीक उच्चारण नहीं कर सकते वे भी भक्तामरका पाठ कंठ सीखते हैं और सामायक स्तवन आदिके समय प्रायः नित्य उच्चारण करते हैं चाहे वे ग्रन्थका अर्थ, रचनाका सौन्दर्य, और शब्द माधुर्य्यका अमृत रस आस्वादन न कर सकते हों परन्तु तो भी इस अपूर्व ग्रन्थ पर अटल श्रद्धा रखते हैं यह सब स्वामी मानतुंगकी कृतिका प्रभाव है।

जैनियोंने इस ग्रन्थको जिस प्रकार अपनाया है उसी प्रकार ग्रन्थकारके पश्चातके टीकाकारोंने भी अपनी कृतिसे उसे अलंकृत किया है यहां तक कि हिन्दी गुजराती आदि भाषाओंमें इसका अनुवाद किया है और प्राण प्रिय काव्य आदि रचके इस ग्रन्थका यश विस्तृत किया है।

स्वामी विश्वभूषण आदि इस ग्रन्थके चमत्कारोंपर कथाएं रचके ग्रन्थकी ख्यातिको और भी विस्तृत कर गये हैं, परन्तु वे संस्कृत भाषामें होनेसे भाषा भाषियोंको उनका आनन्दानुभव नहीं मिल सकता था, इसलिये जैन साहित्य प्रचारक कार्यालयने उक्त कथाओं-का हिन्दी भाषान्तर प्रकाशित कराया है परन्तु स्वामी विश्वभूषण रचित कथाएं जो निराली हैं हिन्दीमें प्रकाशित न होनेसे इसका साहित्य भण्डार छापेके प्रकाशमें अधूरा ही था, यद्यपि विद्वान पं० विनोदीलालजी, स्वामी विश्वभूषण रचित कथाओंको छन्द वद्ध रच गये हैं और उन्हींका प्रकाशित होना आवश्यक था परन्तु वह रचना वहुत विस्तृत है और वहुतसे आधुनिक साहित्य सेवी विद्वान प्राचीन पद्धतिकी रचनापर कम रुचि रखते हैं ऐसा देखकर श्री जिनवाणी प्रचारक कार्यालयके अधिकारियोंने स्वर्गीय विद्वान पंडित विनोदीलालजीकी रचनाके सहारे अविस्तृत रूपमें यह ग्रन्थ लिखने को हमें कई वर्षोंसे उत्साहित किया था, हर्ष है कि श्रीमज्जिनेन्द्र देवके चरण प्रसादसे आज हम सफल मनोरथ हुये हैं।

प्रगट रहे कि स्वर्गीय विद्वान पं० विनोदीलालजी कविता रचित भक्तामर कथाओंके सहारे इस ग्रन्थकी कथाएं लिखी गई हैं पर कथाओंके विषयमें जानवूझकर फेरफार नहीं किया है। ग्रन्थ लिखने का मुख्य ध्येय गद्यमें ही था, परन्तु स्वर्गीय विद्वान पं० विनोदी-लालजीकी लालित्य पूर्ण कवितासे पाठकोंको सर्वथा वञ्चित रखना वांछनीय नहीं था, इसलिये कहीं ज्योंको त्यों और कहीं संकुचित रूपमें उक्त विद्वानकी कविता भी दी गई है और हमसे जहां तक

बना है ग्रन्थका सभी आशय लानेका प्रयत्न किया है, रिद्धि, मंत्र, यंत्र, फल, और साधन विधि इस ग्रन्थके मुख्य अङ्ग हैं इसलिये उन्हें यथा लभ्य सम्मिलित किया है। स्वर्गीय विद्वान पं० विनोदीलालजी ने ग्रन्थके अन्तमें जो अपनी प्रशस्ति दी है वह भी लगा दी है और आशा है कि साहित्य प्रेमी पाठक इसे अपनायेंगे। 'को न विमुह्यति शास्त्र समुद्रे' की नीतिके अनुसार अनेक त्रुटियां भी हमसे होनी निश्चित हैं. इसके लिये पाठकोंसे प्रार्थना है कि हमारा हास्य उपहास्य न करके हमें विदित करें ताकि उसके सुधारकी चेष्टा की जा सके।

कार्तिक वदी ३०
वीर सं० २४६१

विनीत—
बुद्धिलाल श्रावक,
देवरी (सागर) सी० पी०

श्रीमत् स्वामी मानतुंगसूरि ।

मालवा प्रान्तके उज्जैन नगरमें राजा भोज* बड़े ही गुणग्राही और विद्या प्रेमी हो गये हैं, संस्कृत विद्यासे तो उनकी बहुत गाढ़ रुचि थी, उन्होंने स्वयम् संस्कृत भाषाका खूब अध्ययन किया था और अपनी कचहरियों वा नित्य व्यवहारमें संस्कृतको ही स्थान दे रक्खा था। उनकी राज्य सभामें वड़े वड़े संस्कृतके विद्वान थे उनमें विप्र कालिदास और वर रुचिब्राह्मण वहुत प्रवीण थे, उनकी कीर्ति-ध्वजा संसारमें चहुंओर फहराती थी और नामी नामी विद्वान उन्हें सिर झुकाते थे। कालिदासने तो काली देवीको सिद्ध करके विद्या प्राप्त की थी उसने देवीके मठमें जाकर ७ दिन तक कठिन तपस्या की और विना अन्न जलके कालीकी मूर्त्तिके पास उसका ध्यान लगाये औंधा पड़ा रहा। आठवें दिन कालीने प्रगट होकर उसे दर्शन दिये तब कालिदासने राज-पाट कुछ भी न मांगे केवल वचन सिद्धि मांगी और विपत्तिमें सहायक होनेका वचन ले लिया था।

एक दिन सेठ सुदत्तजी अपने प्रिय पुत्र मनोहरको साथ लेकर महाराजा भोजकी सभामें गये। राजाने उन्हें उनका वड़ा आदर किया और कुशल मंगलके पश्चात पूछा कि आपका यह होनहार बालक क्या पढ़ता है? सेठजीने उत्तर दिया कि हे महाराज!

---

* इनका समय ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीका सिद्ध हुआ है।

अभी इसका विद्यारंभ ही है इसने केवल नाम मालाके श्लोक कंठस्थ किये हैं। विद्वान राजा भोजने नाम माला नामका कोई संस्कृत ग्रन्थ सुना भी नहीं था इसलिये वे बोले—

राजा—नाम माला ग्रन्थका नाम मैं आज ही आपके मुखसे सुन रहा हूं, इस अद्भुत पूर्व ग्रन्थके रचयिता कौन हैं ?

सेठजी—महाराज ! आपकी इसी महन्नगरीमें स्याद्वादविद्या पारङ्गत महाकवि श्रीधनञ्जयजी रहते हैं उन्हींकी कृपाका यह प्रसाद है।

राजा—ऐसे महान विद्वान के आपने हमें कभी दर्शन भी नहीं कराये !

विप्र कालिदास सभामें बैठे हुए यह सब चर्चा सुन रहे थे। उसका जैनियोंसे प्राकृतिक द्वेष था और महाकवि धनञ्जयसे तो खास असमंजस था सो उन्हें उनकी प्रशंसा सहन नहीं हुई वह बीच ही में बोल उठे कि महाराज ! कहीं वैश्य महाजन भी वेद पढ़ते हैं ? इन बंजारोंके पास विद्या कहांसे आई ?

विद्वज्जन अनुरागी महाराज भोजके चित्तपर कालिदासके इस कथनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा उन्हें विद्वद्वर धनञ्जयजीसे मिलना ही था क्योंकि विद्वानोंसे प्रेम संभाषणका उन्हें एक व्यसन था इसलिये कालिदासके कहनेकी उपेक्षा करके उन्होंने अपने मंत्रीको धनञ्जयको लेनेके लिये भेज दिया और वे आ भी गये। उन्होंने पहुंचते ही एक आशीर्वादात्मक श्लोक पढ़ा जिसे सुनकर सारी सभाके लोग और राजा भोज बहुत प्रसन्न हुए। राजाने उन्हें बड़े मान सन्मानसे बैठाया और कुशल प्रश्नके अनन्तर पूछा—

राजा—हमने आपको एक प्रसिद्ध विद्वान सुना है, परन्तु आश्चर्य है कि हमसे आप आज तक मिले नहीं ?

धनञ्जय—विहँस कर, कृपानाथ ! आप पृथ्वी पति हैं जबतक पुण्यका प्रबल उदय न हो तब तक आपके दर्शन लाभ क्योंकर हो सकते हैं, आज हमारे धन्यभाग्य हैं जो आपसे साक्षात करके सफल मनोरथ हुआ हूं।

राजा—आप इतने बड़े नामाङ्कित विद्वान हैं फिर यह छोटा सा ग्रन्थ आपको नहीं शोभता। अवश्य ही आपने कोई महाग्रन्थ लिखा होगा या रचनेका प्रारम्भ किया होगा।

यह सुनकर कालिदाससे न रहा गया वह बोले कि महाराज ! नाममाला हम लोगोंकी है, इसका यथार्थ नाम नाममंजरी है, ब्राह्मण विद्वान ही इसके बनानेवाले हैं और ब्राह्मणोंमें ही ऐसी योग्यता होती है ये बेचारे वणिक लोग ग्रन्थ रचनाके मर्मको क्या जाने ! यह बात विद्वान धनञ्जयको बहुत बुरी लगी और लगना ही चाहिये क्योंकि दिन दहाड़े उनकी कृतिपर हड़ताल फेरी जा रही थी उन्होंने कहा कि हे महाराज ! यह सर्वथा झूठ है. मैंने यह ग्रन्थ बालकोंके पठनार्थ रचा है यह बहुत लोग जानते हैं और आप पुस्तक मंगा कर देख लीजिये, जान पड़ता है कि इन लोगोंने मेरा नाम लोप करके अपना नाम रख लिया है और जबर्दस्ती नाम मंजरी बना ली है।

विद्या विशारद राजा भोजने वह ग्रन्थ मंगाया और स्वयं परीक्षा को पश्चात् अन्य विद्वन्मंडलीसे समर्थन पाकर कालिदाससे कहा कि तुमने "यह बड़ा अनर्थ किया है जो दूसरेकी कृतिको

छिपाकर अपनी कृति प्रसिद्ध किया" यह चोरी नहीं तो क्या है ? इसपर कालिदास बोले कि महाराज ! ये धनंजय अभी कल ही तो उस मानतुंगके पास पढ़ते थे जिसमें विद्याकी गंध भी नहीं है अब आज ये कहांसे विद्वान हो गये जो ग्रन्थ रचने लग गये। आप उस मानतुंगको ही बुलावें हमसे शास्त्रार्थ करवाके देख लीजिये, इनके पांडित्यकी परीक्षा सहजमें हो जावेगी।

गुरुदेव मानतुंगजीके विषयमें ऐसे अनादरके वचन धनंजयजी को सहन नहीं हुए वे कुपित होकर बोले कि कौन ऐसा विद्वान है जो स्वामी मानतुंगके चरणोंसे विवाद कर सके। मैं देखूं तुममें कितना पांडित्य है पहिले मुझसे शास्त्रार्थ कर लो पीछे गुरुवरका नाम लेना। बस ! कालिदासको अपने ज्ञानका अभिमान भरपूर तो था ही धनंजयजीसे शास्त्रार्थ छेड़ दिया और विविध विषयोंपर परस्पर वाद विवाद हुआ। स्याद्वादी धनंजयके उत्तर प्रत्युत्तरसे निरुत्तर होकर कालिदास खिसिया गये और राजासे फिर वही बात बोले कि मैं "इनके गुरु मानतुंगसे शास्त्रार्थ करूंगा।"

विद्वान धनंजयका पक्ष प्रबल है यह बात यद्यपि महाराजा भोज समझ चुके परन्तु कालिदासके संतोषके लिये और शास्त्रार्थ का कौतुक देखनेके लिये उन्होंने स्वामी मानतुंगके निकट अपना दूत भेज दिया। दूत वनमें गया और राजाकी आज्ञानुसानर स्वामीसे निवेदन किया कि भगवन ! मालवाधीश महाराजा भोजने आपकी ख्याति सुनकर दर्शनोंकी अभिलाषा की है और दरबारमें बुलाया है सो कृपा करके चलिये। इसपर मुनिराजने उत्तर दिया कि भाई ! राजद्वारसे हमें क्या प्रयोजन है ? हम खेती नहीं

करते, वाणिज्य नहीं करते और न किसी प्रकारकी याचना कतेर हैं फिर राजा हमें क्यों बुलावेगा ? अस्तु। साधुओंको राजासे कुछ सम्वन्ध नहीं है और न हम उनके पास जाना चाहते हैं।

वेचारा दूत हताश होकर लौट पड़ा और मुनिराजने जो उत्तर दिया राजाको सुना दिया। इसपर राजाने फिर सेवक भेजे परन्तु वे नहीं आये, इस प्रकार चार वार हुआ। पांचवीं वार कालिदासके उकसानेसे महाराज क्रोधित हो उठे और अपने सेवकोंको आज्ञा दे दी कि जिस तरह हो सके पकड़के लाओ। कई वारके भटके हुए सेवक यह चाहते ही थे तत्कालही उन महात्माजीको पकड़ लाये और राज्य सभामें खड़ा कर दिया।

उस समय स्वामीजीने उपसर्ग समझकर मौन धारण करके साम्यभावका अवलम्वन कर लिया, राजाने वहुत चाहा कि ये महानुभाव कुछ वोलें परन्तु उनके मुंहसे एक अक्षर नहीं निकला। तव कालिदास और अन्य द्वेषी ब्राह्मण वोले कि महाराज यह कर्नाटक देशसे निकाला हुआ यहां आके रहा है महा मूर्ख है. राजसभा देखके भयभीत हो रहा है. आपका प्रताप नहीं सहसकनेसे कुछ वोलता नहीं है। इसपर वहुत लोगोंने मुनि महाराजसे प्रार्थना की कि "आप संत हैं इस समय आपको कुछ धर्मोपदेश देना चाहिये" राजा विद्या विलासी हैं सुनकर संतुष्ट होंगे। परन्तु वे धीर वीर महा साधु. महामेरुकी तरह अडोल हो गये। सव लोग कह कहके थक गये परन्तु फल कुछ नहीं हुआ। इसपर राजाने क्रोधित होकर हथकड़ी वेड़ी डालके उन्हें अड़तालीस कोठरियोंके भीतर एक वन्दी ग्रहमें कैद कर दिया और मजवूत ताले लगवाकर पहरेदार वैठा दिये।

वे मुनिनाथ तीन दिन रात वन्दीगृहमें रहे, चौथे दिन आदिनाथ स्तोत्रका काव्य रचा जो यंत्र मंत्र और रिद्धिसे गर्भित हैं। ज्यों ही स्वामीने एक वार पाठ पढ़ा त्यों ही हथकड़ी, वेड़ी और सब ताले टूट गये और खट खट किवाड़ खुल गये, स्वामी वाहिर निकल कर चबूतरेपर जा विराजे। बेचारे पहिरेदारोंको वड़ी चिन्ता हुई उन्होंने विना किसीसे कहे सुने फिर उसी तरह उन्हें कैद कर दिया, परन्तु थोड़ी ही देरमें फिर वही दशा हुई सेवकोंने फिर वैसा ही किया, पर मुनिराज फिर वाहिर आ विराजे। अव की वार सेवकोंने राजाके समीप जाके निवेदन किया और मुनिराजके वंधन रहित होनेका वृत्तान्त सुनाया। यह सुनकर राजाको वड़ा आश्चर्य्य हुआ परन्तु पीछे यह सोचकर कि शायद रक्षामें कुछ प्रमाद हुआ होगा, इसलिये सेवकोंसे फिर कहा कि, उन्हें उसी तरह वन्द कर दो और खूब निगरानी रक्खो। सेवकोंने वैसा ही किया परन्तु फिर यह हाल हुआ कि वे सकल व्रती साधु वाहिर निकल कर सीधे राज्य सभामें ही जा पहुंचे।

महात्माजीके दिव्य शरीरके प्रभावसे राजाका हृदय कांप गया उन्होंने कालिदासको वुलाकर कहा कि कविराज! मेरा आसन कंपित हो रहा है मैं अव इस सिंहासनपर क्षणभर भी नहीं ठहर सकता हूं। कालिदासने राजाको धैर्य्य वंधाया और उसी समय योगासन वैठकर कालिका स्तोत्र पढ़ना शुरू कर दिया तो थोड़े ही समयमें कालिका देवी प्रगट हुई।

,इतनेमें मुनिराजके समीप चक्रेश्वरी देवीने दर्शन दिये। चक्रेश्वरीका भव्य, सौम्य और कालिकाका विकराल चंड रूप देख-

कर राज्य सभा चकित हो गई। चक्रेश्वरीने ललकार कर कहा कि कालिके तू यहां क्यों आई! क्या अब तूने मुनि महात्माओंपर उपसर्ग करनेकी ठानी है? अच्छा देख अब मैं तेरी कैसी दशा करती हूं। प्रभावशालिनी चक्रेश्वरीको देखकर कुटिल कालिका कांप गई और नाना प्रकारसे स्तुति करके कहने लगी कि हे माता! क्षमा करो अब मैं ऐसा कृत्य कभी नहीं करूंगी। इसपर चक्रेश्वरीने कालीको बहुतसा उपदेश दिया और अन्तर्द्धान हो गई। इसके पश्चात कालिकाने मुनिराजसे क्षमा प्रार्थना की और अदृश्य हो गई।

राजा और कालिदासने मुनिराजका प्रताप देखकर क्षमा मांगी और नाना प्रकारसे स्तुति की, राजा भोजने मुनिराजसे श्रावकके व्रत लिये और अपने राज्यमें जैन धर्मका खूब प्रचार किया, जिससे आज तक धर्म हरा भरा बना है।

—बुद्धिलाल श्रावक।

यन्त्र नं० १

यन्त्र नं० २

यन्त्र नं० ३

यन्त्र नं० ४

यन्त्र नं० ७

यन्त्र नं० ८

यन्त्र नं० ९

यन्त्र नं० १०

यन्त्र नं० ११

यन्त्र नं० १२

यन्त्र नं० १४

यन्त्र नं० १५

यन्त्र नं० १६

सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र लोके १७ ॥
पीड़ासर्वरोगनिवारणंकुरु २ स्वाहा।

यन्त्र नं० १८

विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्क बिम्बम् १८ ॥
ध्वंसनायनमः ॥ क्लीं ह्रीं नमः

यन्त्र नं० १९

यन्त्र नं० २०

किंवीक्षितेन भवता भुवियेन नान्यः
जयविजयअपराजितेसर्वसौभाग्यं

यन्त्र नं० २२

प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् २२ ॥
अवधारणं कुरु कुरु स्वाहा ।

यन्त्र नं० २३

यन्त्र नं० २४

व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि २५ ॥
ग्यं सर्व सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

यन्त्र नं० २६

तुभ्यं नमोजिन भवोदधिशोषणाय २६ ॥
जयं कुरु कुरु स्वाहा
परजनशांति व्यवहारे

यन्त्र नं० २७

यन्त्र नं० २८

तुङ्गोदयाद्रिशिरसीवसहस्ररश्मेः २९ ॥
जागईकप्पदुमब्रं सर्वसिद्धिं नं नमः स्वाहा
अं अः

यन्त्र नं० ३०

मुच्चैस्तटंसुरगिरेरिवशातकौम्भम्३० ॥
रक्षां कुरु कुरु स्वाहा

यन्त्र नं० ३१

यन्त्र नं० ३२

यंत्र नं० ३५

यंत्र नं० ३६

पद्मानितत्रविबुधाःपरिकल्पयन्ति ३६

मंत्रानूछिंदरममसमीहितंकुरुस्वाहा

उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ती

पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः

यन्त्र नं० ३७

यन्त्र नं० ३८

दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ३८॥

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-

ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं

नमः स्वाहा।

यन्त्र नं० ३९

यन्त्र नं० ४०

यंत्र नं० ४२

त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ४२

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनाद-

उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं

यंत्र नं० ४३

यन्त्र नं० ४४

यंत्र नं० ४५

यंत्र नं० ४६

यंत्र नं० ४७

यस्तावकंस्तवमिमं मतिमानधीते ४७

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-

तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव

ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीणं।

श्रीं क्लीं फट् स्वाहा।

यन्त्र नं० ४८

॥ श्रीआदिनाथाय नमः ॥

श्रीभक्तामर-कथा सार।

ऋद्धि मंत्र, यंत्र और साधन विधि सहित।

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम्।
सम्यक्प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम्॥१॥

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥२॥

भावार्थ—भक्तिमान् देवोंके झुके हुए मुकुटोंके मणियोंकी प्रभा को प्रकाशित करने वाले, पाप रूप अन्धकारको दूर करने वाले, संसारसे डूबते हुए मनुष्योंको चौथे कालकी आदिमें सहारा देनेवाले

और द्वादशांगके पाठी इन्द्रोंने वड़े वड़े त्रिजग मोहक स्तोत्रोंके द्वारा जिनकी स्तुति की है उन प्रथम जिनेन्द्रकी मैं स्तुति करता हूं सो वड़ा आश्चर्य है।

१ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो जिणाणं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा।

मंत्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं श्रीं क्लीं व्लूं क्रौं ॐ ह्रीं नमः स्वाहा।

विधि—पवित्र भावोंके साथ प्रतिदिन ऋद्धि और मंत्रको एक सौ आठ वार जपना चाहिये। और यंत्रको* पासमें रखना चाहिये। इससे सव प्रकारके उपद्रव नष्ट होते हैं।

२ ऋद्धि - ॐ ह्रीं अर्हं णमो ॐ ह्रीं जिणाणं।

मंत्र - ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं व्लूं नमः।

विधि-काला वस्त्र पहिनके, काली माला लेकर, पूर्व दिशाकी ओर मुख करके दंडासन वैठकर २१ दिनतक प्रतिदिन १०८ वार जाप करना चाहिये अथवा ७ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि और मंत्रका जाप करना चाहिये। नमकका होम करना और एक वार भोजन करना उचित है। इससे मस्तककी पीड़ा वन्द होती है और यंत्र पासमें रखनेसे नजर वन्द होती है।

सेठ हेमदत्तकी कथा।
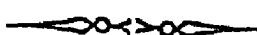
उज्जैन नगरमें एक सुदत्त नामका चोर रहता था, एक दिन कोतवालने उसे चोरी करते हुए

* यन्त्रोंका चित्र आगे दिया गया है।

गिरफ्तार किया, जब दरबारमें पेश किया तो राजाने कुपित होकर पूछा कि सच बतला, तू चोरी का माल कहां रखता है ?

राजाकी डांट लगनेपर चोर सोचने लगा कि किसी धनवानका नाम बतलाऊंगा तो राजाको बहुत धन लाभ होगा और मैं बच जाऊंगा। निदान डरते डरते चोरने वहांके प्रसिद्ध धनिक सेठ हेमदत्तजीका नाम ले दिया। राजाने तुरन्त ही चपरासीके हाथ आज्ञा पत्र भेजकर सेठजीको बुलाया और कहा हम तुम्हें बड़े ईमानदार समझते थे परन्तु तुम्हारे व्रत उपवास जिन-पूजा आदि कोरे पाखंड हैं बताओ इस चोरने जो माल तुम्हें दिया है वह कहां है ?

बेचारे सेठजीके प्राण सूख गये, वे हाथ जोड़ कर कहने लगे कि मैंने इसे आज ही देखा है, मैं इसको पहिचानता तक नहीं हूं। सेठजीका वक्तव्य समाप्त भी नहीं होने पाया था कि चोर बीचहीमें बोल उठा, वह कहने लगा कि दयानिधान ! मुझ गरीबकी रक़म मारनेकी चेष्टा मत करो, और इस तर्जसे कहा कि राजाको पूरी पूरी जम गई।

सेठ हेमदत्तने बहुत विनयकी और अपनी

सचाई सुनाई पर राजाको एक भी न जची। उन्होंने अपने सिपाहियोंको आज्ञा दे दी कि सेठ हेमदत्तको भयङ्कर जङ्गलके अन्धकूपमें डाल दो, तब सिपाहियोंने वैसा ही किया।

पाठक ! राजाने मूर्खता तो कर डाली, परन्तु सेठ हेमदत्तने धीरज नहीं छोड़ा, उन्होंने प्रथम और द्वितीय मन्त्रकी भक्ति पूर्वक आराधना की। जिसके प्रभावसे विजया देवीने प्रगट होकर उन्हें अन्धकूपसे निकाल लिया और बाहर एक सुन्दर सिंहासन पर विराजमान कर खूब आभूषणोंसे सजा दिया। देवीने सेठ साहबकी बड़ी प्रशंसा की और कहा कि तुम कहो तो मैं राजाको अच्छी सजा देऊँ। परन्तु उस धर्म धुरन्धर सेठने यही कहा कि इसमें राजाका दोष नहीं है, हमारा दुर्भाग्य ही इसमें कारण है। जब राजाने ये विचित्र समाचार सुने तो वहां तुरन्त दौड़े गये और सेठ तथा देवीसे बड़ी क्षमा प्रार्थना की। देवीने राजाको बहुत लज्जित किया और सोच विचार कर कार्य करनेके हेतु बहुत कुछ उपदेश देकर देवलोकको चली गई। राजाने जैन-धर्म अङ्गीकार किया और सेठ साहबको बड़ी इज्जतसे घर लाये।

उस चोरको राजाने फिर बुलाया और कठिन दण्ड भोगनेकी आज्ञा दी। परन्तु कृपालु सेठ हेमदत्तजीके कहनेसे छोड़ दिया।

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ !
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

भावार्थ—देवताओंने जिनके सिंहासनकी पूजा की है ऐसे हे जिनेन्द्र ? मैं बुद्धि बिना भी निर्लज्ज होकर आपकी स्तुति करनेको तत्पर हुआ हूं, सो ठीक ही है। पानीमें दिखाई देनेवाले चन्द्रमाके प्रतिबिम्बको एकाएक पकड़नेकी बालकके सिवाय और कौन इच्छा करता है ?

३ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो परमोहि जिणाणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धेभ्यो बुद्धेभ्यः सर्वसिद्धिदायकेभ्यो नमः स्वाहा।

विधि—उक्त ऋद्धिमंत्रको कमलगट्टे की माला द्वारा ७ दिन तक प्रतिदिन त्रिकाल १०८ बार जपना चाहिये। होमके लिये दशांगी[1]

---

१ स्वेतचंदन, अगरचंदन, देवदारू, जटामासी, कपूर, लोभान, नागरमोथा छारछरीली, गूगूल, सिलारस ये दस वस्तुएं।

धूप और चढ़ानेको गुलाबके फूल हों। चुल्लूमें पानी लेकर २१ दिन मुंहपर छींटे देनेसे सब प्रसन्न होते हैं और यंत्र पासमें रखनेसे शत्रुकी नजरबन्द होती है।

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र ! शशाङ्ककान्तान्
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥

भावार्थ—हे गुणसमुद्र ! बृहस्पतिके समान बुद्धिमान मनुष्य भी आपके चन्द्रवत उज्ज्वल गुणोंके कहनेको समर्थ नहीं हो सकता। सच, प्रलयकालकी पवनसे लहराते और जिसमें मगर मच्छ उछलते हैं ऐसे महासमुद्रको कौन मनुष्य अपनी भुजाओंसे तैर सकता है ?

४ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहि जिणाणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं जल यात्रा देवताभ्यो नमः स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धि मंत्रका सफेद मालासे ७ दिन तक प्रतिदिन १००० बार जाप करना, सफेद फूल चढ़ाना, दिनमें एकबार भोजन करना, और पृथ्वीपर सोना। यंत्र पासमें रखकर मंत्र द्वारा एक एक कंकरीको सात सात बार मंत्र कर इसी तरह इक्कीस कंकरियोंको जलमें डालनेसे जालमें मछलियां नहीं आती हैं।

सेठ सुदत्तजीकी कथा।

मालवा प्रान्तकी स्वस्तिमती नगरीमें एक

सेठजी रहते थे। उनका नाम सुदत्त था। उनके यहां जवाहिरातका व्यापार था। जैन-धर्म और श्रावकके क्रिया कर्ममें वे बड़े सावधान थे।

एक दिन सकल संयमके साधक जैन साधु विहार करते हुए आहारके लिये सुदत्त सेठके घरपरसे निकले, सेठजीने उन्हें विधिपूर्वक पड़-गाहा और भक्ति सहित आहार दिया। पश्चात बड़े नम्र भावसे प्रार्थना की कि, मुझे कोई स्तोत्र सिखाइये जिससे आपकी स्मृति रहै और मेरा जन्म सफल होवे। कृपालु मुनिराजने उसे रिद्धि मन्त्र समेत आदिनाथ स्तोत्रके तीसरे, चौथे युगल काव्य सिखा दिये।

थोड़ेही दिनोंके पश्चात सेठ सुदत्तजीने जहाजोंमें व्यापारकी बहुतसी सामग्री लदवा कर कई व्यापारियोंके साथ रतनदीपको चल दिया। आधी दूर भी नहीं गये थे कि समुद्रमें बड़ा भारी तूफान आया और जहाज डगमगाने लगे। लोग बड़े ही घबराये और सबको प्राणोंकी पड़ गई, नाना चेष्टाएं कीं परन्तु जहाज थांभना असंभव दिखने लगा। अन्तमें विद्वान सेठ सुदत्तजीने पञ्च नमस्कार मन्त्र स्मरण करके भक्तामरके तृतीय

और चतुर्थ काव्य जपे। इसके प्रभावसे प्रभावती देवी प्रगट हुई और सबके जहाज किनारे पर आ गये। देवीने सेठजीकी बड़ी इज्जत की और रत्न-जड़ित एक चन्द्रकांति-मणिं भेंट करके चली गई, चलते समय यह कह गई कि कभी आवश्यकता पड़े तो याद करना।

सेठ सुदत्तजी मंडली समेत सकुशल रत्न-द्वीप पहुंच गये और अपने यहांकी सामग्री बेंच कर तथा वहांकी सामग्री खरीद लौट पड़े।

रास्तेमें एक बन्दर स्थानके किनारे पर ठहरे। वहां पास हीमें एक जिन-मन्दिर था उसमें जाकर सेठजीने अष्ट द्रव्यसे जिनपूजा की, मन्दिरके पास ही एक गुफामें एक तापसी रहता था। वह महा हत्यारा, मांसका लोलुपी इनसे कहने लगा कि, यहां सब लोग महिषाकी बलि दिया करते हैं तुम भी देओ. नहीं तो तुम्हारे प्राणोंकी कुशल नहीं है। दयालु सेठ सुदत्तने उस नीच अधमसे कहा कि महाशय! जो हो, हम हिंसा कर्म नहीं करेंगे। महिषा गूगलसे भी कहते हैं यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हम मंगवा देवें। यह सुनकर वह धूर्त और भी क्रोधित हुआ, तब सेठ सुदत्तने राजा

जसोधर*का दृष्टान्त दिया कि उन्होंने मात्र तिल्लीका बकरा बनाके चढ़ाया था जिसके कारण सात भव तक कुगतिमें पड़े। यह धर्मोपदेश उस पापीको विलकुल न जंचा और वह लाल होकर सेठजी पर इकदम टूट पड़ा।

ऐसी और अधार्मिक विपदा देख सेठ सुदत्त-जीने वेही युगल काव्य पढ़कर देवीको चितारा। तुरन्त ही प्रभावती देवीने प्रगट होकर उस तापसी का गला पकड़ लिया तब तो बेचारा लाचार हुआ। और त्राहि त्राहि† कहकर सेठजीके चरणों पर गिरा। अन्तमें "अबसे हिंसा नहीं करूंगा" ऐसा बचन लेकर देवी तो स्वर्ग धामको चली गई और सेठ सुदत्तजी सकुशल घर पर आये।

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम्॥

---

* यशोधर चरित्रमें इसका सविस्तर वृत्तान्त है।

† रक्षा करो, रक्षा करो।

भावार्थ—हे मुनिनाथ ! मैं बुद्धिहीन और असमर्थ हूं तौ भी भक्ति वशात् आपकी स्तुति करनेको तत्पर हुआ हूं। क्योंकि हरिण अपने बालकको बचानेके लिये प्रेमके वश होकर अपने बलको न सोच कर क्या सिंहका साम्हना नहीं करता है ? अवश्य करता है।

५ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहि जिणाणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्रौं सर्व संकटनिवारणेभ्यः सुपार्श्वयक्षेभ्यो नमो नमः स्वाहा।

विधि—पीला वस्त्र पहिन कर ७ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप करना चाहिये पीले पुष्प चढ़ाना और कुन्दरूकी* धूप जलाना चाहिये। जिसकी आंखें दुखती हों उसे सारे दिन भूखा रखके शामको मंत्र द्वारा २१ बार मंत्रे हुए पतासे जलमें घोलकर पिलाने या आंखोंपर छींटनेसे दुखती हुई आंखें बन्द होती हैं। पासमें यंत्र रखना चाहिये।

देवल बढ़ईकी कथा।

कोकन देशमें सुभद्रावती नगरी थी। वहांके राज्य मन्त्रीके यहां सोमकान्ति नामका एक बालक था। ७ बरसकी अवस्था ही में वह पाठशालामें पढ़नेको जाने लगा था और थोड़े ही कालमें वह व्याकरण, काव्य, न्याय और धर्मशास्त्रमें प्रवीण हो गया था।

---

* वन कून्दरू=कांकड़ा सिंघी।

एक दिन उस महारूपवान सोमकांतिने बहुत से लड़कोंको गेंद खेलते देखा और उसका भी खेलनेको जी हो आया। निदान वह एक लड़के का डंडा मंगाकर खेलने लगा, भाग्यसे खेलते २ वह डण्डा टूट गया। बेचारा सोमकांति बहुत ही लज्जित हुआ और उस डंडेवाले लड़केसे पूछने लगा कि बताओ तुम डंडा कहांसे लाया करते हो? हम भी तुम्हें ला देवें। लड़कोंने देवल बढ़ईका घर बता दिया और सोमकांति उसके घर गये। बढ़ईने डंडेके दाम ले लिये और दूसरे दिन तैयार कर रखनेको कह दिया।

सवेरा होते ही सोमकांति पाठशालामें तो गया परन्तु बढ़ईके यहांसे डंडा लानेकी चिन्ता लगी रही इसलिये वह बीचहीमें भोजनके बहाने छुट्टी लेकर देवलके घर चला गया, हाथमें भक्तामर· जीकी पुस्तक लिये हुए था उसे देखकर बढ़ई बोला।

बढ़ई—यह हाथमें क्या लिये हुए हो?

बालक—जैन-धर्मका पवित्र ग्रन्थ भक्तामर है।

बढ़ई—थोड़ा सा मुझे भी पढ़कर सुनाओ।

बालक—पांचवां काव्य रिद्धि मन्त्र समेत बांचकर सुना देता है।

बढ़ई—इस मंत्रका क्या फल है ?

बालक—यह मंत्र मनवांछित फलका दाता है।

बढ़ई—तब तो आप हमारे ऊपर कृपा करो और मुझे विधिपूर्वक सिखा दो।

बालक—पहिले तुम श्रावकके व्रत लेओ पीछे मन्त्र सीख सकते हो।

बढ़ईने श्रावकके व्रत और जैन-धर्म अंगीकार करके मंत्र सीख लिया और बालक दो डंडे ला कर एक उस लड़केको देकर दूसरेसे आप खेलने लगा।

एक दिन बढ़ई बनकी गुफामें गया और पवित्र अङ्ग होकर सीखा हुआ काव्य मंत्र सिद्ध किया जिसके प्रसादसे सिंहपर बैठी, हाथमें भयङ्कर सर्प लिये अजिता देवी प्रगट हुई।

देवी—हे वत्स! तूने किस लिये मेरा आराधन किया है? तेरी जो कुछ इच्छा हो सो मांग।

बढ़ई—मैं नितान्त दरिद्री हूं ऐसी कृपा करो जिससे धन लाभ हो।

देवी—देख! यहांसे ईशानकोनमें वह पीपलका झाड़ है उसके नीचे अटूट धन गड़ा है, तू खोद लेना।

देवी तो स्वर्ग-लोकको चली गई और बढ़ई वहांसे करोड़ोंको मालियत हीरा आदि जवाहिरात खोद लाया, और खाने खर्चने आनन्द करने लगा धन सम्पन्न होकर उसने जिनमंदिर बनवाये और जिनपूजा, दान पुन्य आदिमें बहुत यश प्राप्त किया।

लोगोंको बहुत आश्चर्य हुआ और उन्होंने राज्य दरबारमें चरचा की कि जो सौभाग्य राजा को प्राप्त नहीं है वह देवल नामके 'कठफार' को प्राप्त है। राजाने देवलको बड़े सन्मानसे बुलाया और सब हाल सुनकर बहुत प्रसन्नता प्रगट की।

जैसे दिन देवलके फिरे भगवान सबके फेरैं।

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतु ॥६॥

भावार्थ- मैं मन्द ज्ञानी हूं और विद्वानोंके समक्ष हास्यका पात्र हूं तो भी आपकी भक्ति, स्तोत्र रचनेके लिये मुझे वाध्य करती है:

कोयल, बसन्त* ऋतुमें जो मीठी वाणी बोलती है उसमें आमके वृक्षोंका सुन्दर मौर ही कारण है।

६ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्ठबुद्धीणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रां श्रीं श्रूं श्रः हं सं थ थ थः ठः ठः सरस्वती भगवती विद्या प्रसादं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—लाल वस्त्र पहिनकर २१ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप करने और यंत्र पास रखनेसे बहुत शीघ्र, विद्या आती है। बिछुड़ा हुआ, आ मिलता है। इस विधिमें फूल लाल हों, धूप कुन्दरूकी देवे, पृथ्वीपर सोना और एक भुक्ति करना चाहिये।

राजपुत्र भूपालकी कथा।

भारतवर्षमें काशी नगर जगत् विख्यात है, परमपूज्य भगवान पार्श्व और सुपार्श्व प्रभुकी जन्म भूमि होनेसे परम पवित्र है। वहांके उस समय के राजाका नाम हेमबाहन था, वे राजा जैन-धर्ममें बड़े ही सावधान थे। पुन्योदयसे उनके दो पुत्र हुए, मानों उनके घरमें सूर्य, चन्द्र ही अवतरे अथवा जिन भाषित निश्चय और व्यवहार उभय-नयही प्रगट हुए, बड़ेका नाम भूपाल और छोटेका भुजपाल था।

* चैत बैसाख ये दो महीने बसन्त ऋतुके हैं।

ये बालक जब पढ़ने योग्य हुए तब राजाने श्रुतधर पण्डितको बुलाया और धनमानसे विभूषित करके दोनों बालक विद्याध्ययनके लिये सौंप दिये। यद्यपि गुरूका विद्या दान दोनोंको समदृष्टिसे था परन्तु बड़े पुत्र भूपालको बिलकुल सफलता नहीं हुई। हां! लघुपुत्र भुजपाल, पिंगल, व्याकरण,तर्क,न्याय,राज्यनीति,सामोद्रक ज्योतिष, वैद्यक, शस्त्र, शास्त्र आदि सभी विद्याओंमें व्युत्पन्न हो गया।

गुरूजी, ज्येष्ट राजकुमार भूपालके साथ बहुत पचते थे और वह भी स्वयं बहुत मगज़मारी करता था, परन्तु मूर्ख ही रहा। कहा भी है—

दोहा।

विद्या, विभव, उतंग कुल, और सुजस संसार।
दिये विना नहिं पाइये, बड़े रतन ये चार ॥१॥
शास्त्र दान दीनौं नहीं, किमि उचरै सुख बैन।
पुनि विद्या पावै कहां, खर*सम चितवै नैन ॥२॥

अपढ़ रहनेसे भूपाल कुमारका जहां तहां अनादर होता था। राज दरबार, कुटुम्ब परिवारकी इनपर हास्यप्रद श्रद्धा रहती थी। महा-

* गधा।

राजा हेमवाहन प्रिय भुजपाल पर जितना स्नेह रखते थे उतना ही भूपाल कुमारका उपहास करते थे।

बेचारे निरुपाय भूपाल कुमार. अपनी अशिक्षित दशासे बड़े ही खेद खिन्न रहते थे, दिन रात उन्हें एक ही आरत सताया करती थी। एक दिन उन्होंने अपने लघु भ्रात भुजपालसे सलाह ली तो उन्होंने श्रीभक्तामरजीका ६ वाँ काव्य रिद्धि मंत्र समेत सिखाकर उसे सिद्ध करनेकी सम्मति दी। राजकुमार भूपाल एक दिन गंगा नदीके किनारे गये और अंग शुद्धि करके विधि पूर्वक मंत्र आराधन करने लगे। परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मी देवी प्रगट होकर कहने लगीं।

देवी—क्योंरे बालक! तूने मुझे काहेको स्मरण किया है?

बालक—मैं विद्याविहीन हूँ मेरा अज्ञान हटाओ।

देवी—एवमस्तु! तथास्तु!! तेरे मनकी इच्छापूर्ण होगी।

देवी आशीर्वाद देकर चली गई और भूपाल कुमार, धुरन्धर विद्वान हो गये। उनपर विद्या ऐसी प्रसन्न हुई कि, काशी नगरमें कोई भी पंडित

उनसे टक्कर नहीं ले सकता था। भाई भुजपाल कुमार और पिता हेमवाहन उनकी विद्यासे बहुत प्रसन्न रहते थे और धन्य धन्य कहते थे।

जिनराजके चरणोंके प्रसादसे जैसी विद्या भूपाल कुमारको मिली वैसी सबको प्राप्त होवे।

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥

भावार्थ–हे प्रभु! जिस प्रकार सूर्य्यकी किरणोंसे, संपूर्ण लोक में व्याप्त, भौंरा समान काला, रात्रिका अन्धकार अतिशीघ्र मिट जाता है। उसी प्रकार आपके स्तवनसे जीवोंके संसार परंपरासे बंधे हुये पाप क्षणभरमें नाश हो जाते हैं।

७ ऋद्धि–ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीज बुद्धीणं।

मन्त्र–ॐ ह्रीं हं सं श्रां श्रीं क्रौं क्लीं सर्वदुरितसंकटक्षुद्रोपद्रव कष्टनिवारणं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि–हरे रंगकी मालासे २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जपने और यंत्र गलेमें बांधनेसे सर्पका विष उतर जाता है तथा किसी प्रकारका विष नहीं चढ़ता। इसके सिवाय ऋद्धि मंत्र द्वारा १०८ बार

कंकरी मन्त्रित करके सर्प सिरपर मारनेसे सर्पके कीलित हो जाता है। इस विधिमें माला हरी और धूप लोभान की हो।

श्रेष्ठिपुत्र रतिशेखरकी कथा।

पटना नगरमें राजा धर्मपाल राज्य करते थे वे बड़े ही न्याय शील और धर्मात्मा थे। उसी शहरमें बुद्ध नामके एक धनाढ्य सेठ रहते थे। सेठजीके एक रतिशेखर नामका पुत्र था वह बड़ा ही रूपवान और विनयवान था, श्रीमती नामकी अर्जिकाके पास उसने खूब विद्याध्ययन किया था। व्याकरण, कोष, सिद्धान्त और मन्त्र जन्त्रमें रति-शेखरने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी।

पटना नगरके बाहर एक भेषी तपस्वी रहता था। वह महामिथ्याती, पाखण्डी और चारित्रहीन था। उसने कुछ कुदेवोंकी आराधना कर रक्खी थी इसलिये पटना नगरमें मन्त्र विद्यामें उसकी ख्याति हो गई थी, यहाँ तक कि राजा धर्मपाल भी उसकी सेवामें रहते थे और बड़ी विनय-सुश्रुषा किया करते थे। उस पाखण्डीका नाम धूलिया था। चेला-चाँटी भी उसके पास एक दो रहा करते थे।

एक दिन उस मिथ्यादृष्टिका एक शिष्य "लोभी गुरू लालची चेला" की उक्तिवाला वहांसे निकला कि जहां रतिशेखर कुमार मन्दिरमें विद्याध्ययन करते थे। रतिशेखरने इस कुसाधु भेषधारी चेलाकी बात भी न पूछी, तिसपर उसे बहुत बुरा लगा।

ज्योंही वह अपने तपसी गुरुके पास गया त्योंही रतिशेखरके विरुद्ध बहुतसी उलटी सीधी जमाई कि रतिशेखरने हमारा बड़ा अनादर किया है, इसपर वह कुसाधु बड़ा कुपित हुआ और बेताली विद्यासे एक देवीको बुलाकर उसे रतिशेखरके मारनेको भेजा, देवी वहांतक गई तो अवश्य, परन्तु महा जिनधर्मी उस बालकके पुन्यके आगे वह कांपने लग गई और लौटकर तपस्वीसे कहने लगी।

देवी—अरे मूर्ख वह जैन-धर्मी है उसके मारनेको मैं वा तू समर्थ नहीं हैं, अगर वह करुणा निधान बालक आज्ञा देवे तो मैं तेरा ही सर्वनाश करनेके लिये तत्पर हूँ।

तपस्वी—हाथ जोड़कर, माता! रोष मत करो, कमसे कम इतना तो करो कि, रतिशेखरके घरपर खूब धूल बरसाओ।

देवी रतिशेखरके घर गई और—

चौबोला।

रतिशेखर मंदिरके ऊपर, भई धूर बहु वृन्दा।
दशों दिशा छाई धूरासों, दुरे गगन गन चन्दा॥
उठ्यौ प्रात सामायक कारण, रतिशेखर यों देखै।
चहूँ ओर है अति अँधियारी, बरसत धूल विशेखै॥

यह हाल देखकर घरके सब लोग तो बड़े घबड़ाये परन्तु वह धीर-वीर रतिशेषर जान गया कि यह करतूत उसी कुलिंगी की है। वह नदी किनारे गया और स्नान आदिसे शुद्ध होकरके सातवें काव्य मन्त्रकी आराधना शुरू कर दी, जिससे 'जंभादेवी' प्रसन्न हुई और बेतालीके ऊपर दौड़ी गई। कहने लगी अरी रांड़! जैनमतीको त्रास देती है। फिर क्या था, बेताली वहांसे तो भाग गई, पर उसी नीच साधुके ऊपर धूल वृष्टि करके कहने लगी—

चौपाई।

अरे दुष्ट पठई मुहि कहां। मान भंग मेरो भयो जहां॥
अब मैं तहंतें भागी आय। तोहि जमालय देहुं पठाय॥
तू रतिशेखरके ढिग जाय। जंभासों सब क्षमा कराय॥

निदान बेतालीके कहनेसे वह तापसी रति-

शेखरके घर गया जहां जंभा देवी प्रगट बैठी थी। बारम्बार विनय स्तवन करके तापसीने रतिशेखर-से क्षमा प्रार्थना की और श्रावकके व्रत अंगीकार किये, राजाने भी जैन-धर्म ग्रहण किया। पश्चात देवी स्वर्ग धामको चली गई।

देखो, जैन-धर्मके प्रसादसे एक बालकने ही उस जोगीको पापोंसे बचा लिया।

मत्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद—
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥८॥

भावार्थ—हे नाथ! पानीकी छोटीसी बूंद कमलनीके पत्रपर पड़नेसे मोतीकी शोभाको प्राप्त होती है, उसी प्रकार यद्यपि मैं तुच्छ बुद्धि हूं तो भी यह आपका स्तोत्र आपके प्रभावसे सज्जनोंके* चित्तको हरण करेगा।

८ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो पादाणु सारिणं।

मन्त्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा। ॐ ह्रीं लक्ष्मण रामचन्द्रदेव्यै नमः स्वाहा।

विधि—अरीठाके वीजकी मालासे २१ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप करने और यंत्र पासमें रखनेसे सब प्रकारका अरिष्ट दूर होता है। तथा नमककी ७ डली लेकर एक एकको एक बार मन्त्रित करके किसी पीड़ित अंगको झाड़नेसे पीड़ा मिट जाती है। इस विधिमें धूप गुग्गलकी हो और नमककी डलीको होममें रखना चाहिये।

---

* दुर्जनोंको अच्छेसे अच्छा भी काव्य बुरा लगता है, इसलिये यहां सज्जन विशेषण दिया है।

सेठ धनपालकी कथा।

काञ्चन देशमें एक वसन्तपुर नगर था वहां एक धनपाल नामका वैश्य रहता था, वह बड़ा धर्मात्मा और पापभीरु था। उसकी स्त्री गुणवती पूरी गुणवती थी, परन्तु धन सन्तानके अभावमें बेचारे ये दोनों दुखी रहते थे।

भाग्यवशात एक दिन चन्द्रकीर्ति और महिकीर्ति मुनि युगल विहार करते हुए सेठ धनपालके दरवाजेसे निकले। उसने उन्हें आदर पूर्वक पड़गाहा और नवधाभक्ति पूर्वक आहार दिया। ठीक ही है समरसी जैनमुनि सधन निर्धन सभीके घर पवित्र करते हैं।

निःअन्तराय आहार देनेके पश्चात सेठकी धर्म-पत्नीने मुनिराजसे विनय पूर्वक पूछा कि स्वामी! मुझे कर्मने दोनों प्रकारसे मारा है प्रथम तो निर्धनता पीस रही है दूसरे संतान हीनतासे दुखित रहती हूँ सो स्वामिन्! ऐसी कृपा करो कि दोमें से एक भी तो संकट निवारण हो। कृपालु मुनिराजने श्रीभक्तामरजीका नौवां काव्य, मन्त्र विधि समेत सेठ धनपालको सिखाकर प्रस्थान किया।

एकान्त स्थानमें तीन दिन रात बैठकर पर्यंक-आसनसे सेठ धनपालने मन्त्रकी आराधनाकी तो महिदेवीने प्रगट होकर कहा—

देवी— चौपाई

अहो साध*मैं पूछौं तोहि। किहिकारण आराधी मोहि॥
इच्छा होय सो पूरन करौं। जन्म जन्मके दुःख सब हरौं॥१॥

धनपाल— चौपाई

कहै धनपाल सुनो हो माय। धन कारन आराधी आय॥
जो मुझ माय कृपा अब करो। तो मेरौ दुःख दारिद्र हरौ॥१॥

देवी— चौपाई।

पूजा करौ जिनेश्वर तनी। दिन प्रति संपति बाढ़ै घनी॥
पूजा तें हौ लक्ष्म अपार। और सुजस बाढ़ै संसार॥१॥

* साधना करनेवाला आराधक।

देवीने जिनपूजाका उपदेश करके और देवोपुनीत एक सुन्दर सिंहासन भेंट करके देवलोकको चल दिया और सेठ धनपालजी जिनपूजामें त्रिकाल रत रहने लगे।

दोहा।

महामन्त्र परभावतें, भई लक्ष घर माहिं।
दिन दिन बाढ़त चन्द्रसम, यामें संसौ नाहिं॥

जब वहांके राजा सिद्धिधरने सुना कि जो नामका तो धनपाल था, पर निरा धनहीन था वह बड़ा ही धनाढ्य हो गया है तब वे बड़े विस्मित हुए। एक दिन वे स्वयम् सेठ धनपालजीके घर गये देवी द्वारा भेंटमें प्राप्त सिंहासन देख बड़े प्रसन्न हुए। राजाके कहनेसे सेठ धनपालने सिंहासन पर श्रीजिनेन्द्रकी पूजा की तो पुनः महिदेवी नृत्य करती हुई प्रगट हो गई. जिसे देखकर राजाको जैन-धर्मपर दृढ़ विश्वास हो गया। देवी जैन-धर्मको सर्वोपरि कहके देवलोकको चली गई और राजाने प्रजा समेत जैन-धर्मको अंगीकार किया।

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि॥९॥

भावार्थ—हे भगवन्! सूरज तो दूर रहो, उसकी प्रभा ही तालाब के कमलोंको विकसित कर देती है। उसी प्रकार आपका निर्दोष स्तोत्र तो दूर रहो, आपकी इस भव परभव सम्बन्धी कथा ही जगज्जीवोंके पापोंको दूर करती है।

९ ऋद्धि—ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं णमो संभिण्ण सोदराणं ह्रां ह्रीं ह्रूं फट् स्वाहा।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्रौं क्ष्वीं रः रः हं हः नमः स्वाहा।

विधि—चार कंकरी एकसौ आठ बार मंत्र कर चारों दिशाओंमें फेंकनेसे रास्ता कीलित हो जाता है। कोई भी प्रकारका भय नहीं रहता, चौर, चोरी नहीं कर पाता।

महारानी हेमश्री की कथा।
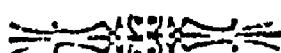
कामरू देशकी भद्रा नगरीमें राजा हेमब्रह्म रहते थे, उनकी आज्ञाकारिणी भार्याका नाम हेमश्री था, वे उभय दम्पति जैन धर्मके सांचे श्रद्धानी और नीतिपरायण थे।

एक दिन ये दोनों वन क्रीड़ाको गये और वहां एक वीतरागी महामुनिराजके दर्शन किये।

चौपाई।

भक्ति सहित गुरुकी स्तुति करी। जनम सफल मानों तिहिघरी॥
धन्य भाग गुरु दर्शन दयौ। मेरो पाप जनमको गयौ॥

महाराज हेमब्रह्म और तो सब प्रकारसे सम्पन्न थे परन्तु संतानके अभावमें सदा व्याकुल रहते थे इसलिये दोनों राजा और रानीने मुनिराजसे निवेदन किया—

राजा— चौपाई।

जब देखौं काहूकौ बाल। तब मेरे मन उपजै शाल॥
यह दुःख वचतें कह्यौ न जाय। किये कौन अघ हम मुनिराय॥

मुनि— चौपाई।

श्री अरहंत देव नहिं जान। जिन गुरुकी मानी नहिं आन॥
अरु सिद्धान्त शास्त्र नहिं सुने। संतति होय न तेही गुने॥१॥
पुष्पवती जो नारी होय। श्री जिन मन्दिर पहुंचे सोय॥
अपनो धरम गमावै जोय। संतति मुख देखै नहिं कोय॥२॥
जो पशु पंछी जीव अपार। तिनकी दया न कीनी सार॥
पूजे जाय कुदेवन पाय। यातें पुत्र विहूने थाय॥३॥

रानी— दोहा।

बहुत पाप हमने किये, सो वरनै मुनिराय।
जातें कटैं कलंक सब, सो गुरु कहौ उपाय॥

मुद्रि—　　　　चौपाई ।

प्रथम एक जिन मन्दिर करो । तापर कनक* कलश विस्तरो ॥
अरुण ध्वजा चहुंदिशि फर हरो । छत्र चमर सिंघासन करो ॥१॥
बांधो तोरण बन्धनवार । मंगल द्रव्य आदि भ्रंगार† ॥
पुनि चौवीसों बिम्ब भराय । रतन रूप्य‡ कलधौत× कराय ॥२॥
करो प्रतिष्ठा मनवचकाय । भक्ति सहित चव संघ बुलाय ॥
चार दान दीजे सुख दाय । इहि विधिसों सब पातक जाय ॥३॥

---

* सोनेका । † कलश । ‡ चांदी । × सोना ।

इसके सिवाय इतना और करो कि सोने वा चांदी अथवा कांसेकी थालीमें श्री भक्तामरजीका नवमा काव्य केशर चन्दनसे लिखो और उसे पानीमें धोकर बड़े प्रेम पूर्वक पी लिया करो ।

वन विहारी मुनिराज तो विहार कर गये और राजा रानीने घर आकर वैसा ही किया। पुण्य की जड़ पाताल तक रहती है सो स्वल्प काल ही में रानी हेमश्रीके गर्भमें बालक आया और नव महिने उपरान्त माता पिताको हर्ष दायक पुत्र हुआ ।

भक्तामरके मंत्रोंका ऐसा ही अचिन्त्य प्रभाव है।

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण भूतनाथ
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभीष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥

भावार्थ—हे जगतके भूषण रूप भगवान ! संसारमें आपके सत्य और महान गुणोंकी स्तुति करने वाले मनुष्य आपहीके समान हो जाते हैं सो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। क्योंकि जो कोई स्वामी अपने आश्रित पुरुषको विभूतिके द्वारा अपने समान नहीं करता है तो उसके स्वामीपनेसे क्या लाभ है ? अर्थात् कुछ भी नहीं।

१० ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सयंबुद्धीणं।

मंत्र—जन्म सध्यानतो जन्मतो वा मनोत्कर्षधृतावादिनोर्यानाक्षान्ताभावे प्रत्यक्षा बुद्धान्मनो ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः श्रां श्रीं श्रूं श्रः सिद्धबुद्धकृतार्थो भव भव वषट् सम्पूर्णं स्वाहा।

विधि—उक्त ऋद्धि मंत्रकी आराधनासे तथा यन्त्र पासमें रखनेसे कुत्तेका विष उतरता है और नमककी ७ डली लेकर प्रत्येकको १०८ वार मन्त्र कर खानेसे कुत्तेके विषका असर नहीं होता। धूप कुंदरू की हो। ७ या १० दिन तक १०८ वार जपना चाहिये।

श्रीदत्त वैश्यकी कथा।

पूर्व बंगालमें सुभद्रा नामकी महानगरी थी,

वहां एक श्रीदत्त नामका वैश्य रहता था, वह धनके अभावमें दरिद्री था।

एक दिन सकल संजमधारी मुनिराज आहार के लिये उस नगरमें पधारे, वहांके राजा नरवाहनने भक्ति पूर्वक आहार दिया, मुनि महाराज आहार करके जा रहे थे कि उस श्रीदत्त नामके वैश्यने उन महात्माजीके चरण पकड़ लिये और कहने लगा—

चौपाई।

मैं परदेश फिर्‌यौं चिरकाल। द्रव्य हेतु भटक्यौ वेहाल॥
पंथ मांहि मोकों भय लगै। देहु मंत्र जासों भय भगै॥१॥

तब उन कृपालु मुनिराजने सर्व भयभंजन १० वां काव्य उसे सिखा दिया और विहार कर गये।

श्रीदत्त वणिक मंडली समेत परदेशको जा रहा था कि—

चौपाई।

चलत पंथ भूलो वह जाय। परौ भयानक वनमें आय॥
एक सिंह तहं पहुंचो जाय। क्षुधित महा बहु विधि विललाय॥१॥
गरजै शब्द करै विकरार। गजगनकौ मद भंजन हार॥
जम सम आवत देखौ जबै। विह्वल भगे सकल जन तबै॥२॥

सुमरौ काव्य मन्त्र तिहि वार। श्री जिनवर आदीसुर सार॥
सुमरत सिंह भगौ ततकाल। छिनमें नाश भयौ वह शाल॥३॥

संकट तो कट गया परन्तु वे लोग रास्ता भूल गये और बड़े ही आकुलित हुए। तब श्रीदत्तने पुनः मंत्र स्मरण किया और उसके प्रभावसे एक जिन चैत्यालय दिखाई दिया उसकी ओर चलते चलते ठिकाने लग गये, वहां पहुंचकर भावपूर्वक जिन वन्दना की।

चैत्यालयके पासमें एक जोगी बैठा हुआ था सो इन्हें देखकर वह कहने लगा।

जोगी—तुम कौन हो? क्यों और कहांसे आये हो?

श्रीदत्त—मैं सुभद्रा नगर निवासी श्रीदत्त नामका वैश्य हूं। दारिद्रजन्य दुःखसे दुःखित, धन की खोजमें निकला हूँ।

जोगी—यहां थोड़ी दूर रसकूप है, उस रस को तांबेपर डालनेसे वह कंचन हो जाता है। तू चल उसमेंसे हम रस निकलवा देंगे और बराबर बांट लेंगे।

श्रीदत्त—अच्छा महाराज चलिये। (दोनों जाते हैं)

जोगीने एक चौकीपर बैठाके चारों कोनोंपर रस्सी बांधके और साथमें रीती तूम्बी दे के श्रीदत्तको कुएंमें उतार दिया। तूम्बी भरकर श्रीदत्त ने खींचनेको कहा और जोगीने तूम्बी खींच ली। पश्चात दूसरी तूम्बी लटकाके जोगीने आवाज दी कि एक तूम्बी और आने दो श्रीदत्तने वह भी भर दी। पश्चात चौकी पर श्रीदत्तको बैठाके खींचता जाता है और आप विचारता है कि आधा रस इसे देना पड़ेगा इसलिये रस्सियां काटके जोगी रफूचक्कर हो गया और बेचारा श्रीदत्त धड़ामसे कुएंमें गिर पड़ा।

विपत्तिके मारे श्रीदत्तने काव्यका जाप करके देवीका स्मरण किया। तत्काल देवी दौड़ी आई और श्रीदत्तको उस महाकूपसे निकाल कर बड़े सन्मानके साथ बहुतसा द्रव्य देकर घरको विदा किया और आप देव लोकको चली गई।

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत्॥११॥

भावार्थ—हे भगवान! टिमकार वर्जित नेत्रोंसे सदा देखने योग्य ऐसे आपको देखकर मनुष्योंके नेत्र अन्य देवोंमें संतोषित नहीं होते हैं। क्योंकि ऐसा कौन पुरुष है जो चन्द्रकिरण समान उज्ज्वल ऐसे क्षीरसमुद्रका जल पीनेपर फिर समुद्रके खारे पानीकी इच्छा करेगा।

११ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो पत्तेयबुद्धीणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रां श्रीं कुमतिनिवारिण्यै महामायायै नमः स्वाहा।

विधि—स्नान करके पवित्र वस्त्र पहिरे और दीप, धूप, नैवेद्य, फल लिये प्रसन्न चित्तसे खड़े रहकर सफेद मालासे १०८ बार जपनेसे और यन्त्र पास रखनेसे जिसे बुलानेकी इच्छा हो वह आ सकता है। और लाल मालासे २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जपनेसे भी उपर्युक्त फल होता है। इस विधिमें धूप कुंदरूकी होना चाहिये।

राजपुत्र तुरंगकुमारकी कथा।

जिस समयकी यह कथा है उस समय रतनावती

पुरीमें राजा रुद्रसेन राज्य करते थे उनकी प्राण-प्यारी भार्याका नाम सुधर्मा था। उनके एक पुत्र था उसका नाम तुरंगकुमार था।

प्रिय तुरंगकुमारने कावेरी नदीके किनारे एक अति रमणीक बगीचा बनवाया था। उसकी मनोहर क्यारियां, हरे हरे, अंकुर, रंगबिरंगे फूल और स्वादिष्ट फल, नन्दन बनकी समता करते थे जहां तहां विश्राम भूमि और चित्रशालाएं कुवेर की कृतिका दिग्दर्शन कराती थीं। यह सब था परन्तु 'सौ गुन पै इक औगुन फीको' वाली बात थी वह यह कि उस बागमें जो बावड़ी थी उसका पानी बहुत ही खारा था मानों उसका झरना सीधा 'लवण समुद्र' से ही लग रहा था। उन्होंने मंत्र, जंत्र, तंत्र, होम, आराधन आदि अनेक उपचार किये किन्तु सफलता नहीं हुई। विचारे तुरंग-कुमारको इस बातका बड़ा ही दुःख रहता था और दिन रात इसी चिन्तासे चिंतित रहते थे। पुत्रकी इस चिंतासे महाराज रुद्रसेन और उनकी शील धुरन्धर भार्या सुधर्मा सतीको अहो रात्रि बड़ा खटका लगा रहता था। एक दिन वे स्वामी चन्द्रकीर्ति मुनिकी बन्दनाको गये।

अडिल्ल ।

वन्दे शीश नमाय, पाय मुनिराय के ।
कर नमोस्तु त्रयवार, चरन लवलायके ॥
धरम बुद्धि मुनिराय, दई भूपाल को ।
समाधान सब पूछि, सो बाल गुपालको ॥१॥
पुनि मुनिनायक धर्म, अमोल बखानियो ।
शिव सुखदायक धर्म, दसौं विधि जानियो ॥
पालो शक्ति प्रमान, सुनिहचौ राखहीं ।
सुनै बैन भूपाल, मुनीसुर भाखहीं ॥२॥

मुनिराजका धर्मोपदेश समाप्त हो जानेके अनन्तर राजा रुद्रसेनने प्रार्थना की :—

मुनि— चौपाई ।

मो सुत एक बावरी करी । सो निकरी खारे जल भरी ॥
कोटि उपाय बादि ही गयो । वाको जल मीठो नहिं भयो ॥१॥
व्यन्तर यच्छ मनाये घने । देवी दानव पितर दासने ॥
अब स्वामी उपदेश कराव । जातें जल मीठो ह्वै जाव ॥२॥

राजा— चौपाई ।

प्रथमहि जिन स्नान कराय । पंचामृत की धार दिवाय ॥
पंच कलश कंचनके करो । ते वाही जल सेती भरो ॥१॥
ते जिन ऊपर ढारौ आय । आनन्द मङ्गल हर्ष बढ़ाय ॥
मुनिवर साधु मिलै जो कोय । अति आदर सों ल्यावहु सोय ॥२॥

सो ही जल सों पाक करेहु। सो मुनिवर के अग्र धरेहु॥
सो वह जल मुनिके परसाद। छिनमें आवै अमृत स्वाद॥३॥

राजा रुद्रसेन मुनिराजको नमस्कार करके घर पर चले आये और उनकी आज्ञानुसार चलने लगे, एक दिन सकल संयमी मुनि आहारको पधारे सो भक्ति पूर्वक निरंतराय आहारके अनंतर मुनिराजने बावड़ीके पास खड़े होकर श्री भक्तामर जीका ११ वां काव्य पढ़ा जिसके प्रभावसे बावड़ी का जल मिष्ट और स्वादिष्ट हो गया मानों 'छीरसागर' ही भर रहा है।

मुनिराजने तुरंगकुमारको भी इस मंत्रकी विधि बतला दी जिसको उसने साहस पूर्वक आराधन किया तो बनदेवीने प्रगट होकर कहा कि हे वत्स! तेरी क्या इच्छा है? तुरंगकुमारने कहा मेरी बावड़ीका पानी मीठा बना रहे, देवी एवमस्तु कहके अन्तर्धान हो गई।

सारांश! मंत्रके प्रसादसे विष भी अमृत हो जाता है फिर पानीका मीठा हो जाना तो एक साधारण बात है।

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥

भावार्थ—हे त्रैलोक्य शिरोमणि भगवान्! जिन शान्त भावों की छाया रूप परमाणुओंसे आप रचे गये हैं, वे परमाणु उतने ही थे। क्योंकि आपके समान रूप पृथ्वीमें दूसरा नहीं है।

१२ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो बोहिबुद्धीणं।

मंत्र—ॐ आं आं अं अः सर्वराजाप्रजामोहिनी सर्वजनवश्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—यन्त्र पास रखने और १०८ बार उक्त मन्त्र द्वारा तेल मन्त्रित करके हाथीको पिलानेसे उसका मद उतर जाता है। ४२ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप लाल मालासे करना चाहिये और धूप दशांगी हो।

मंत्रीपुत्र महीचन्द्रकी कथा।

अहल्यापुर नगरमें राजा कुमारपाल रहते थे, उनके राज्य मन्त्रीका नाम विलासचन्द्र था, मन्त्रीजीके पुत्रका नाम महीचन्द्र था। प्रिय महीचन्द्रकी एक वैश्य पुत्रके साथ बड़ी गहरी मित्रता

थी, एक दिन इन दोनोंने वनमें विराजे हुए मुनि-महाराजके दर्शन किये और प्रार्थना की—

चौपाई।

जो स्वामी तुम कृपा करेहु। अद्भुत मन्त्र हमें इक देहु ॥
जातें कौतुक होय अपार। जैन धरम परकाशन हार ॥

मुनि—

तव मुनि कहें सुनो हो वच्छ। भक्तामरका मन्त्र प्रतच्छ ॥
सो तुम साधौ मन वचकाय। मन वांछित पूरन सुखदाय ॥

कृपालु मुनीश्वरने, श्रीभक्तामरजीका बारहवां काव्य विधि समेत दोनोंको सिखा दिया। बणिक पुत्र तो मात्र सीखके ही रह गया परन्तु मन्त्री पुत्र महीचन्द्रने ७ दिन तक मंत्रकी आराधना की तब मोहादेवी प्रगट हुई और कहने लगी।

देवी— चौपाई।

मांग मांग जो इच्छा होय। कौन काज आकर्पी मोय ?
जनम तनौं तेरौ दुख हरौं। कहै काज सो बेगहिंकरौं ॥

मन्त्री पुत्र— दोहा।

जैन धरम जातें बढ़ै, बढ़ै दयाको अंग।
ऐसो वर मोहि दीजिये, वचन न होवै भंग ॥

देवी तो आशीर्वाद देके चली गई और जब मन्त्री पुत्र गया तो देखता क्या है कि उसके घर

पर कामधेनु (गाय) खड़ी हुई है । लोग देखकर आश्चर्य करने लगे तब देवीने प्रगट होकर कहा--

चौपाई ।

याको पय सींचौ जहं जाय । देव करैं तहं कौतुक आय ॥
मन वांछित सब पूरन करै । रिद्धि सिद्धि नव निधि आवरै ॥

इसकी मन्त्रीपुत्रने परीक्षा की और कामधेनुका थोड़ासा दूध निकालके मिट्टीके घड़ेपर छोड़ दिया तो वह तत्काल सोनेका हो गया। फिर चमत्कार दिखानेके लिये वही दूध अपने घरके चौकेमें डाल दिया तो भांति भांतिके पकवान तैयार हो गये, हजारों स्त्री पुरुषोंको जिमाया पर भंडार भरपूर ही रहा। जब यह समाचार राजा कुमारपालने सुने तब उन्होंने मंत्री पुत्रको बड़े प्यारसे बुलाया और अपनी श्रीमती रानी सरूपाके पास भेज दिया। महारानीने प्रिय मंत्री पुत्रपर बड़ा स्नेह जनाया और कहा—

रानी— चौपाई ।

मेरी कुक्ष पुत्र नहिं होय । मोसों बांझ कहें सब कोय ॥
जो यह इच्छा पूरन करो । तो जगमें बहुजस विस्तरौ ॥

मन्त्री पुत्र—

मिथ्या धरम छांड़ तुम देव । जैन धरमकी कीजे सेव ॥
श्रावकव्रत पुनि लेहु बनाय । जामें जीव दया अधिकाय ॥

राजा और रानीने बडी भक्ति और विश्वास पूर्वक जैन धर्म अंगीकार किया।

चौपाई।

तव मन्त्री सुत कैसो कियो। देवीकौ आकर्षण लियौ॥
रानी कुक्ष सुगर्भित हियौ। रानी नृप आनन्दित हियौ॥
सुखसौं वीत गये नव मास। जन्म्यौ सुत सो भयौ हुलास॥
दिन दिन वाल वढ़ै ज्योंचन्द। मातुपिता मन होय अनन्द॥
वड़ो भयौ विद्या पढ़ गयौ। जिनमत धीर धुरन्धर भयौ॥

दोहा।

जो कोऊ याकौं पढ़ै, और सुनै दै कान।
सकल सिद्धि ताकौं मिलै, अजर अमर पद थान॥

वक्त्रं क ते सुरनरोरगनेत्रहारि
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलङ्कमलिनं क निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डु पलाशकल्पम्॥१३॥

भावार्थ—हे नाथ! देव मनुष्य और नागेन्द्रोंके नेत्रोंको हरण करनेवाला, और तीन लोककी उपमाएं कमल, चन्द्रमा, दर्पण आदि को जीतनेवाला कहां तो आपका मुख, और कहां कलंकसे मलिन चन्द्र मण्डल, जो दिनको छेवलेके पत्तेके समान सफेद हो जाता

है। सारांश! सदा प्रकाशमान और निष्कलंक आपके मुखको चन्द्रमाकी उपमा नहीं दी जा सकती।

१३ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो ऋजुमदीणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं हं सः ह्रौं ह्रां ह्रीं द्रां द्रीं द्रौं द्रः मोहनी सर्वजनवश्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—यन्त्र पास रखने और ७ कांकरी लेकर प्रत्येकको १०८ बार मन्त्रित कर चारों ओर फेंकनेसे चोर, चोरी नहीं करने पाते और रास्तेमें किसी प्रकारका भय नहीं रहता। पीली मालासे ७ दिन तक प्रति दिन १००० जाप करना चाहिये। धूप कुन्दरू की हो, पृथ्वीपर सोना और एक भुक्ति करना चाहिये।

श्रीसुमतिचन्द्र मंत्रीकी कथा।

अङ्ग देशमें चम्पावती नामकी नगरी थी वहां कर्ण नामके राजा राज्य करते थे उनकी रूपवती स्त्रीका नाम विशनावती था वह महा मिथ्यातिनी और कुशीलनी थी।

एक दिन कपाली नामका जोगी रानीके पास आया तब रानीने बड़ी विनयके साथ उससे कहा—

रानी— चौपाई।

दो पिशाचिनी विद्या मोय। तौ मैं सतगुरु मानौं तोय॥

जोगी—

पहिले दीजे मधुकी धार। पुनि महिषा कीजे संघार॥
पहिली रजस्वलाको वस्त्र। कर त्रिशूल ले बैठे तत्र॥
भूमि मसान अमावस रात। मंत्र पढ़े इकलख इह भांति॥
माला गरें हाड़की लेय। होमे मास जीव वलि देय॥
मन शंका न करै कछु दक्ष। तब पिशाचिनी होय प्रतच्छ॥

इस प्रकारकी विधि समेत पिशाचिनी विद्या, रानीको सिखाके विदा मांग कर गया और रानीने एक महीने पर्यन्त चेष्टा करके पिशाचिनी देवीको वशमें कर लिया।

चम्पावती नरेशके दरबारमें सुमति नामके मंत्री थे वे वास्तविक सुमति ही थे, वे सच्चे जैन-धर्मी सद्ग्रहस्थ थे, एक दिन राजाने राज्य सभा-में धार्मिक चर्चा छेड़ दी तब मन्त्रीजीने कहा—

मन्त्री— चौपाई।

मन्त्री कहै सुनो हो राय। धर्म मूल करुणा ठहराय॥
सब धर्मनकौ करुणा मूल। हिंसा सकल पाप अनुकूल॥१॥
ज्यों जहाज बिन उदधि न तरै। त्यों करुणा बिन धरम न धरै॥
भूपनमें चक्रेसुर जेम। सब धरमोंमें करुणा तेम॥२॥
जैन धरम उत्तम जग माँहि। यामें संशय कीजे नाहिं॥
जैन शास्त्रके बिन अभ्यास। धर्म न क्यों हू आवै पास॥३॥

राजा— दोहा।

तब राजा उत्तर दियो, वृथा कही यह बात।
वैष्णव धर्म जगत्रमें, है उत्तम विख्यात ॥१॥
जो नर विष्णूको भजै, पंडित पूज्य कहाय।
विष्णु जोति जगमें जगै, विष्णु लोकको जाय ॥२॥

इतना कहके राजा दरबारसे उठ गये, वे बड़े ही क्रोधित चित्त थे। राजाकी ऐसी कुपित दृष्टि देख रानीने कारण पूछा—

रानी— अरिल्ल।

काहे प्रभु दिलगीर, सो मोहि बताइये।
बिन बोले महाराज, न मनकी पाइये ॥

राजा—

मंत्री है अति नीच, सुबुधि मद धारिकें।
पोषें अपनो धरम, हमारो टारिकैं ॥१॥

रानी— सोरठा।

हे राजनके राय, मनमें खेद न कीजिये।
अबही देहुं दिखाय, मेरे गर्व प्रहारिनी ॥

वह झटसे स्मशानमें गई और पिशाचिनीको चितारा तो वह तत्काल प्रगट हो आई।

रानी— चौबोला।

ए माता सेना सब अपनी, लीजे बेग बुलाई।

सेठ तामलिप्तकी कथा ।

अपने भरतखण्डके दक्षिण प्रान्तमें जैन धर्मका अच्छा प्रचार है वहां किसी समय तामली नगरमें तामलिप्त नामके एक सेठ रहते थे जैन धर्ममें उनकी अच्छी रुचि थी और चन्द्रकीर्ति मुनिराजके पास भक्तामर काव्य मन्त्रोंका अध्ययन किया करते थे ।

एक दिन उन्होंने विदेश जानेकी तैयारी की और बहुतसा माल जहाजमें भरा कर बहुतसी वणिक मण्डलीके साथ रवाना हो गये । वे सब पवित्र जैन धर्मके धारक थे पंच परमेष्ठी और णमोकार मन्त्रका स्मरण करते हुए सकुशल मनोवांछित स्थानपर पहुंच गए, धर्मके प्रसादसे कोई विघ्न नहीं आया । यहांसे जो वस्तुएं वे ले गए थे वहां वेंच दी और वहांसे बहुतसे हीरा जवाहिरात खरीद कर जहाज भर लिया ।

इन लोगोंको इस वाणिज्यमें इतना विशाल लाभ हुआ कि फूले नहीं समाते थे । परन्तु उस परिग्रहमें इतने मस्त हो गये कि, जिन पूजन

रोक सकता है ? सारांश ! जिन गुणोंने आपका आश्रय पा लिया है उन्हींसे त्रैलोक व्याप्त है।

१४ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विपुल मदोणं।

मन्त्र—ॐ नमो भगवती गुणवती महा मानसी स्वाहा।

विधि—यन्त्र पासमें रखने और ७ कंकरी लेकर प्रत्येकको २१ बार मन्त्र कर चारों ओर फेंकनेसे व्याधि शत्रु आदिका भय मिट जाता है। लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है वायु रोग नष्ट होता है।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्॥१५

भावार्थ—हे भगवान ! देवांगनाओंके द्वारा यदि आपका चित्त किंचित भी चञ्चल नहीं हुआ तो इसमें क्या आश्चर्य है ? क्योंकि कम्पित किये हैं पर्वत जिसने ऐसे प्रलयकालके पवनसे क्या सुमेरु पर्वतका शिखर हिल सकता है ? कभी नहीं !

१५ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दशपुव्वीणं।

मंत्र—ॐ णमो भगवती गुणवती सुसीमा पृथ्वी वज्रशृङ्खला मानसी महा मानसी स्वाहा।

यंत्र पास रखने और मन्त्र द्वारा २१ बार तेल मन्त्र कर मुख पर लगानेसे राज दरबारमें बोलबाला रहै, सौभाग्य बढ़ै और

लक्ष्मीकी प्राप्ति होवै। चौदह दिन तक प्रतिदिन लाल माला द्वारा १००० जाप करना, दशांग धूप देना और एक भुक्ति करना चाहिये।

महारानी कल्यानीकी कथा।

केतपुर नगरके राजाकी स्त्रीका नाम कल्याणी था वह बड़ी धर्मात्मा और सच्चरित्र रानी थी जिन पूजा और भक्तामर पाठ उसका नित्य कार्य था।

चौपाई।

एक दिवस यह कारन भयौ। राजा वन क्रीड़ा कौं गयौ॥
किलोल कामिनी गोली भखी। भक्ष अभक्ष कछू नहिं लखी॥१॥
खातहिं काम व्यापियौ ताहि। सकल विचार बिसरिगौ वाहि॥
सांझ भई आयौ घर माहिं। काम अंध सूझै कछु नाहिं॥२॥
जोग अजोग चित्त नहिं धरी। चम्पा बांदी सों रति करी॥
रानी देखि कही मन माहिं। यह कुलीनके लक्षण नाहिं॥३॥

राजाकी ऐसी ओछी वृत्ति देख महारानी कल्याणी बड़ी ही चिन्तामें पड़ गई थीं संसार और विषय भोग उन्हें विरस भासने लगे थे।

चौपाई।

इतनेमें कामातुर राय। लाग्यो रानी लेन बुलाय।
काम केलि क्रीड़ाके हेतु। फिर रानी तब उत्तर देत॥१॥

राजा कीजे कोटिउपाय। मैं क्रीड़ा करिवेकी नांय ॥
तुम्हरी क्रिया देखिकेंडरौं। मैं अब तुम्हरौ संग न करौं॥२॥

राजा—

तब फिर राजा कही विचार। क्यों नहिं आवत हौ वर नार ॥
आज कहा रिस उपजी तोह। क्यों नहिं अंग लगावत मोह ॥

रानी—

हम सों क्रीड़ा सों कह चली। तुमहि जोग है चम्पा भली ॥
धर्म क्रिया करि हीत जो होय। तासौं संगति करौं न कोय ॥

केतपुर नरेशके चित्तमें विवेककी मात्रा थोड़ी तो थी ही आपने कुपति होकर सिपाहियोंको आज्ञा दे दी कि रानी कल्यानीको विकट वनके कुएमें ढकेल आओ तब सिपाहियोंने वैसा ही किया। उस पवित्र चरित्रा कल्याणी वाईने श्री भक्तामरजीके १४ वें और १५ वें युगल काव्यकी आराधनाकी जिसके प्रशादसे जंभा देवी प्रगट हुई।

सोरठा।

सुमरत जंभा आय, सिंघासन रचि हेमकौ।
रानीकौं वैठाय, आपुन कीन्हीं आरती ॥१॥

जब राजाको खवर लगी तब वे वहां दौड़े गये और कहने लगे—

राजा— चौपाई।

मैं मारनकौं डरौ याह। को मारै प्रभु राखै ताह ॥

देवी—

एरे दुष्ट क्रिया करि हीन। अति मति मन्द बुद्धि करि छीन॥
तेरे नहीं विवेक विचार। डारी निज तिय कूप मंझार॥
यह सुमरत है मन्त्र महंत। जाके वशमें देव अनन्त॥
संजम शील धरैं गुन भरी। गुन मंगलकी वेली खरी॥

राजा—

तब राजा लाग्यौ पछतान। मोकों माता भयो न ज्ञान॥
बहुत वात कहिये कह तोहि। अब तू मातु क्षमा कर मोहि॥

निदान राजाने अपना दुश्चरित्र छोड़ दिया और श्रावकके व्रत अङ्गीकार किये जंभा देवी स्वर्ग लोकको चली गई और महारानीने अर्जिकाके व्रत लिये और आयुके अन्तमें समाधि पूर्वक शरीर छोड़कर स्वर्गको सिधारी।

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः॥१६॥

भावार्थ-हे नाथ! आप त्रैलोकको प्रकाशित करनेवाले अद्वितीय और विचित्र दीपक हो जिसको न वत्ती चाहना पड़ती है न तेल,

परन्तु वह बड़े बड़े पर्वतोंको हिलाने वाली हवाके झोकोंसे भी नहीं बुझ सकता।

१६ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो चवदश पुव्वीणं।

मंत्र—ॐ णमो मंगला सुसीमा नाम देवी सर्व समीहितार्थ वज्र शृंखलां कुरु कुरु स्वाहा।

बिधि—यंत्र पास रखने और १०८ बार मन्त्र जप कर राज दरबारमें जानेसे प्रति पक्षीकी हार होती है। शत्रु का भय नहीं रहता। ६ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप हरे रंगकी माला द्वारा करना और धूप कुन्दरूको देना चाहिये।

क्षेमंकर कुमारकी कथा।

—*—

मंडपपुर नगरमें राजा महीचन्द्र राज्य करते थे उनकी सोम बदनी भार्याका नाम सोमश्री था। उभय दम्पत्तिके दामपत्य प्रेमसे उनके मित्रा बाई नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई थीं।

जब वह ७ बरसकी हुई तब श्रीमती नामकी अर्जिकाके पास लौकिक और धार्मिक शिक्षा आरम्भ करा दी थी। उस विनयवती कन्याने उन सचरित्र गुरानीके पास अनेक प्रतिज्ञाओंके सिवाय यह भी आखड़ी ली थी कि रत्नमई जिन

प्रतिमाके दर्शन किये विना अन्न जल ग्रहण न करूंगी।

जब उनकी मनोहरी कन्या १६ वर्षकी हो गई तब एक दिन रानी सोमश्रीने अपने स्वामीसे मौका पा कर कहा—

चौपाई।

पुत्री भई व्याहके जोग। याको कीजे शुभ संयोग॥

तब राजा महीचन्द्रने पुरोहितको बुला कर कहा कि बाईके लिये सुन्दर घर बरकी खोज करो। पुरोहित जहां तहां विचरता कुन्दनपुरमें पहुंचा वहां सेठ क्षेमपालके यहां क्षेमंकर नामका पुत्र था।

चौपाई।

विद्या विषैं सकल परवीन। रूप कला मनमथ वश कीन॥
बुद्धि विवेक कला विज्ञान। सकल गुननकरि परम निधान॥१॥
राज द्वार महिमा तसु घनी। पण्डित लोग गिनें शिरो मनी॥
पंचन मध्य सभा सिंगार। मंत्र जंत्र साधैं शुभसार॥२॥
भक्तामरमें अति लव लीन। पठन पठावनमें तल्लीन॥
विद्या ज्ञान प्रकाशन शूर। परमारथ पथ करुणा पूर॥३॥

अधिक लिखनेसे क्या सर्व गुण संपन्न चिरंजीव क्षेमंकरके साथ मित्रा बाईकी सगाई करके पुरोहितजी घरको लौट गये। दोनों ओरसे विवाह

की तैयारियां होने लग गई और सेठ क्षेमपाल बड़े ठाठसे सज-धजकर बरात ले गये।

दोहा।

ब्याह भयो अति प्रीतिसों, कीन्हीं बिदा बरात।
गये गेह अपने सबै, आनन्द उर न समात॥

चौपाई।

घर भीतर जब दुलहिन जाय। ना जल पिये अन्न नहिं खाय॥
लागे करन सकल उपचार। यह कछु दोष देव अनुसार॥

सासू—

जौन भांति भोजन तुम करो। सो विधि सकल हमें उच्चरो॥

बहू—

पार्श्वनाथके दर्शन करौं। तब मैं अन्न पान आदरौं॥

सासू—

यामें बहू कहै तू कहा। प्रतिमा है घर भीतर महा॥
उठकर मुख धोवहु तुम बाल। दर्शन जाय करौ तत्काल॥

बहू—

रतन बिम्ब मैं देखौं जबै। भोजन पान आचरौं तबै॥

कुटुम्बी लोग—

सब परिवार मनावे ताह। रतन बिम्ब कहुं देखे नाह॥
इह हठ छांड़ बहू तुम देउ। जाय दिवाले दरशन लेउ॥

बहू—

हाथ जोड़ि व्रत लियो महन्त। साख दई गुरु देव सिद्धन्त॥
क्यों न प्राण अब हुं कढ़ि जांय। तौहू व्रत छोड़नकी नाहिं॥

क्षेमंकर—

इतनेमें क्षेमंकर आय। तिन लीनों जोगासन जाय ॥
निर्धूम वर्तिकाव्य मुख पढ़ो। अतिशयतेज अखंडित बढ़ो ॥१॥
सिगरी रैन बीत जब गई। चतुरभुजी तब प्रगटत भई ॥
चार भुजा सोहैं तसु अंग। महा जोति फैली सरवंग ॥२॥

देवी—

क्यों आराधी मोकों बाल। कारण होय कहो तत्काल ॥
इच्छा होय सो पूरन करो। मनमें तनिक न संशय धरो ॥३॥

क्षेमंकर—

पार्श्वनाथ प्रतिमा मणि मई। ताकी नारि प्रतिज्ञा लई ॥
जब देखे ऐसो जिन राज। तब वह ग्रहण करै जल नाज ॥१॥

पश्चात् वह देवी रत्नद्वीपको गई और वहांसे रत्न बिम्ब लेकर आई, सबने विनय पूर्वक मन्दिरजी में पधराये, बाई ने भक्ति पूर्वक जिन-दर्शन करके भोजन पान किया, देवी निज स्थानको चली गई और विद्वान सेठ क्षेमंकर अपनी पत्नी समेत सुखसे रहने लगे।

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र लोके।१७।

भावार्थ—हे मुनीन्द्र! आप ऐसे विलक्षण सूर्य हैं जो न तो कभी अस्त होता है, न राहुसे ग्रसा जाता है, न बादलोंसे आच्छादित होता है और एक क्षणमें समस्त संसारको प्रकाशित करता है।

१७ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठांग महा कुशलाणं।

मंत्र—ॐ णमो णमि ऊण अट्ठे मट्ठे क्षुद्रविघट्ठे क्षुद्रपीड़ा जठरपीड़ा भंजय भंजय सर्वपीड़ा सर्वरोगनिवारणं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—यंत्र पास रखने और अछतू पानी मन्त्र द्वारा २१ बार मन्त्रित कर पिलानेसे पेटकी असाध्य पीड़ा तथा वायु शूल गोला आदि सभी रोग मिटते हैं। ७ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप सफेद माला द्वारा करना और धूप चन्दनकी देना चाहिये।

बाई कल्याणश्री की कथा।

कुमकुम देशमें चक्रेशपुर नामका नगर था वहांके राजा नरसिंघ और रानी रतनावतीके एक पुत्र हुआ उसका नाम रतनशेखर रखा।

चौपाई ।

षोडश वरस भयो जब वाल । काम कला उपजी तिहिंकाल ॥
जित तिति निकसि तमासैं जाय । पर तिय निरखि रहै जु लुभाय ॥
रसिक कथा नित सुनै सुभाय । तिय श्रृङ्गार महा सुख पाय ॥

जब चक्रेशपुर नरेशको पुत्रकी काम जागृति प्रतीति होने लगी तब उन्होंने रत्नशेखरका विवाह कल्याणश्री नामकी राज्यकन्याके साथ कर दिया। वह कन्या महाशीलवान मानों धर्मकी अवतार ही थी, परन्तु रत्न शेखर महादुराचारी और नीच वृत्तिका था।

वह सुशील यह कामी अंत । भयो केर वदरी* को संग ॥

रत्नशेखरकी ऐसी कुटिल परणति देखकर एक दिन कल्याणश्रीने कहा—

कल्याणश्री चौपाई ।

सुनो कंत इक मेरी वात । जासों सुजस होय विख्यात ॥
धर्महीन नर मूरख जोय । पर तियसों रति मानै सोय ॥
धर्म नीति जाको न सुहाय । अंतकाल मर दुरगति जाय ॥
ज्ञानवंत ! इतनी अब करो । शील अणुव्रत निहचैं धरो ॥

रतनशेखर— अडिल्ल छन्द ।

राज सम्पदा रिद्धि, सुभाग न पाइये ।

---

* वेर ।

कीजे सुख संसार, न ताहि गमाइये ॥
ध्यान व्रतादिक नेम, वृथा क्यों कीजिये ।
मेरे घर बहु सुक्ख, नारि सुन लीजिये ॥१॥

दोनोंका बहुत कुछ उत्तर प्रत्युत्तर हुआ। अन्तमें रनतशेखरने यही कहा कि मैं अपने गुरुजी से पूछूंगा और जैसा वे कहेंगे वैसा ही श्रद्धान करूंगा। वह अपने गुरु एक जोगीके पास गया और बड़े विनयसे पूछने लगा कि महाराज! क्या जैन-धर्ममें भी कुछ सचाई है?

जोगी— चौपाई।

वे वादी मिथ्याती आंय। नंगदेव पूजत हैं जाय॥
विद्या धरम न जाने कोय। वेद बात मानत नहिं लोय॥

इतना कहके उसने अपने हाथमें की मुद्रिका निकाल कर सामने फेंक दी और कहा मेरा चमत्कार देखो अचेतनको चलाये देता हूं उसने थोड़ा सा मन्त्र पढ़के फूंक दिया कि मुद्रिका चलने लगी। भोले भाले रतनशेखरको जोगीकी इस लीला पर बड़ी श्रद्धा हो गई वह कल्याणश्रीके पास आया और जैन-धर्मकी निन्दा करता हुआ कहने लगा कि जैन-धर्ममें मन्त्र जन्त्र कुछ भी नहीं है।

चौपाई ।

जिन शासनमें मंत्र जो होय । मोकों प्रगट दिखावहु सोय ॥

चौपाई ।

तव तिन काव्य मन्त्र आदरो । रिद्धि सिद्धि गरभित गुण भरो ।
'नास्तं कदाचित' सुमरो जवै । गन्धारी सो पहुंची तवै ॥

देवी—

बोली क्यों सुमरी तुम बाल । कारज कहो करौं ततकाल ॥

कल्याणश्री—

मैं माता तुम सुमरी एम । कौतक एक दिखाओ जेम ॥
जैन धर्मकी महिमा होय । मिथ्यामत मानै नहिं कोय ॥१॥

तब उस गंधारी देवीने एक सुवर्णमई नगर रच दिया जिसमें बड़े बड़े विशाल जिनमन्दिर और रत्नमई जिनबिम्ब बन गये। उस नगरको वापी, कूप, तड़ाग, बगीचा आदि सब प्रकारसे अनुपम कर दिया जिसे देखकर सब लोग चकित हो गये और मिथ्यामती लोगोंकी अकल ठिकाने आ गई वे जैन-धर्मको धन्य धन्य कहने लगे। उस जोगी वा रतनशेखर और अन्य अन्य स्त्री पुरुषों तथा चक्रेशपुर नरेशको जैन-धर्म अङ्गीकार कराके गन्धारी देवी निज स्थानको चली गई।

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकांतिं
विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्वम् ॥१८॥

भावार्थ—हे भगवान! आपका मुख कमल ऐसे विलक्षण चन्द्रमा की शोभाको प्राप्त है। जो सदैव स्वयम् प्रकाशित रहता वा जगतको प्रकाशित करता है और मोह अन्धकारको दूर करता है। उसे न राहु ग्रसता है और न वह मेघोंसे ढंक सकता है।

१८ ऋद्धि – ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्यणयट्ठिपत्ताणं।

मंत्र—ॐ नमो भगवते जय विजय मोहय मोहय स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा।

विधि—यंत्र पास रखने और १०८ वार मंत्र जपनेसे शत्रु अथवा शत्रुकी सेनाका स्तम्भन होता है। ७ दिन तक प्रति दिन १००० जाप लाल मालासे करना, धूप दशांगी देना और एक वार भोजन करना चाहिये।

भद्रकुमारकी कथा।

जिस समयकी यह कथा है उस समय कुलिंग देशमें बरबर नगर था वहां राजा चन्द्रकीर्ति रहते थे जब उनके मन्त्री सुमतिचन्द्रका स्वर्गवास हो

गया था तब राजाने उनके पुत्र भद्रकुमारको बुलाया और कहा कि तुम अपने स्वर्गीय पिताकी पदवी अङ्गीकार करो।

भद्रकुमार निरा निरक्षर था. लिखना पढ़ना तक भी वह नहीं जानता था बेचारा बड़ा ही लज्जित हुआ और राजाको अपना अभागा दोष कह सुनाया कि मेरे मंत्रीपदसे मेरी ही नहीं आप की भी जगतमें हँसी होगी।

राजा— दोहा।

बालक तुमने क्यों नहीं, विद्या पढ़ी सुभाय।
तात तिहारो दक्ष अति, तुम मूरख दुखदाय॥

भद्रकुमार— दोहा।

या जगमें बहुते रतन, पग पग पै रसकूप।
भाग्य बिना नहिं पाइये, निहचैं जानो भूप॥

राजा— सोरठा।

जामें विद्या नाहिं. ताको जनम अकार्थ है।
यह समझो मनमाहिं, नीके ही प्रिय भद्र तुम॥

भद्रकुमार अत्यन्त लज्जित होकर दरबारसे तो चला आया, परन्तु उसके चित्तमें विद्या धन कमानेकी गहरी चिन्ता हो गई। वह एक दिन बनवासी सकल संजमी मुनि महाराजके पास

गया और विनय पूर्वक अपने चित्तका क्लेश कह सुनाया।

मुनि— चौपाई।

मिथ्या धरम छांड़ तुम देव। मन वांछा पूरन कर लेव॥
जो तुम जैन धरम आचरो। विद्या धन गुन सुख आदरो॥१॥

जब गुणग्राही भद्रकुमारने मुनि महाराजके उपदेशसे जैन-धर्म और श्रावकके व्रत अङ्गीकार कर लिये तब उन कृपालु मुनीश्वरने श्रीभक्तामर-जीका १८ वां काव्य विधि समेत सिखा दिया। भद्रकुमारने अन्न, जल तक छोड़कर तीन दिवस तक बड़ी तपस्या की और मन्त्र सिद्ध किया। परिणाम यह हुआ कि वज्रा देवी प्रगट हुई, और कहने लगी—

देवी— चौपाई

क्यों बालक आकर्षी मोय। मांग मांग जो इच्छा होय॥

बालक—

वार वार मैं वन्दौं पाय। विद्या वर दीजे मो माय॥

विद्या वर देकर देवी निज स्थानको चली गई और मन्त्री पुत्र भद्रकुमार अत्यन्त प्रसन्न होकर घरको चले आये।

चौपाई।

सुखसों आन मिलो परिवार। लायो विद्या अपरंपार ॥
पुनि वह गयो राज दरबार। जाय राजसों करी जुहार ॥१॥
देखत राजा हर्षित भयो। सकल सभा मनमोहित भयो ॥
आदर दै पूछें महराय। तुम विद्या कह पाई भाय ॥२॥
तब प्रिय भद्र कही समझाय। पूरब कथा कही सुख दाय ॥
तब राजाने ऐसो कियो। फेर मंत्रि पद इनको दियो ॥३॥
सकल सभामें भयो प्रधान। राजा बहु विधि राखो मान ॥
पुनि राजा श्रावक व्रत लियो। अपनो गुरु करके थापियो ॥४॥

पाठक, जैन-धर्मके प्रसादसे केवलज्ञान रूपी महानविद्या सिद्ध होती है तब यह शास्त्रीय विद्या मिल जाना एक मामूली सी बात है।

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमस्सु नाथ।
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥१९॥

भावार्थ—हे नाथ! जिस प्रकार पके हुए धान्य वाले देशमें पानीके बोझसे झुके हुए बादल व्यर्थ हैं, उसी प्रकार जहां आपके मुखचन्द्रसे अज्ञान अन्धकार नाश हो चुका है, वहां रात्रिको

चन्द्रमासे और दिनको सूर्यसे क्या प्रयोजन है ? व्यर्थ ही शीत और आतप करते हैं।

१६ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराणं।

मंत्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रुं ह्रः यक्ष ह्रीं वषट् नमः स्वाहा।

विधि—पासमें यंत्र रखनेसे और मन्त्रको १०८ वार जपनेसे अपने पर प्रयोग किये हुये दूसरेके मंत्र, विद्या, टोटका, जादू, मूठ आदिका असर नहीं होता। उच्चाटनका भय नहीं रहता।

सेठ सुखानन्दकुमार की कथा।
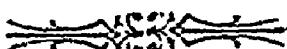
कुरुजांगलदेशमें हस्तनागपुर* प्रसिद्ध है वहां किसी समय राजा सूरपाल थे उसी नगरमें उन दिनों देवल नामके एक सेठ रहते थे उनके यहां हीरा, जवाहिरातका व्यापार होता था, सेठजीके एक सुखानन्द नामका बालक था। उनको सेठजीने अन्य अन्य धर्म शास्त्रोंके सिवाय सकल कलुषविध्वंशक श्रीभक्तामर काव्यका भी अध्ययन कराया था।

---

* देहली होकर मेरठको गाड़ी जाती है, वहांसे मोहाना होकर हस्तनापुर जाना पड़ता है। दिल्लीको ही हस्तनागपुर न समझना चाहिये।

राजा सूरपालको एक दिन बहुतसे गहने बनवानेकी आवश्यकता पड़ी सो उन्होंने प्रिय सुखानन्द कुमारको बुलाया और सोना, चांदी और बहुतसे हीरा माणिक सब अच्छा सच्चा माल उन्हें सम्हला दिया। और सुखानन्द कुमारने वह सब माल सुनारको राजाके ही सामने सौंप दिया।

दोहा।

कनक रतन मुकता घने, दिये सुनार बुलाय।
रानी जोग सुहावने, भूषण देहु बनाय ॥१॥
तस्कर सोनी कह कियो, रतन बदल सब लीन।
खरे आप घरमें धरे, खोटे सब गढ़ दीन ॥२॥

अडिल्ल।

आभूषण गढ़ लाय, रायके कर दिये।
राजा देखत दृष्टि, महा कोपित हिये ॥
क्यों रे दुष्ट सुनार, कहा तूने करी।
हमहूँ को न डरात, कहा मनमें धरी ॥१॥

सुनार— सोरठा।

बोल्यो दुष्ट सुनार, राय हमें लागै कहा।
जो मुहि दीनों आय, सो हम दियो गढ़ायके ॥१॥
सेठ बाल बुलवाय, महाराज सब पूछिये।
जो मैं बदलौं राय, तो जानो सो कीजिये ॥२॥

राजाने तुरन्त ही सुखानन्द कुमारको बुलवाया और खूब डांट फटकार लगाई।

राजा— चौपाई।

सांचे मणि तुम धरे दुकाय। खोटे हमें दये लगवाय॥
तुम हमको नहिं संके रंच। राजनके न चलै परपंच॥१॥

सुखानन्द—

सेठ नन्द बोलो कर जोर। राजा हमें न लाओ खोर॥
हम जो रतन बदन यदिलेंय। तुमको ज्वाप कौन विधि लेंय॥२॥

उस विवेकहीन राजाने सुनारको तो विदा कर दिया और सेठ सुखानन्दको जेलखानेमें कैद कर देनेका हुक्म देकर कहा—

रतन हमारे देहि मंगाय। तब मैं याकौं देहुं छुड़ाय॥

जब जेलखानेमें सुखानन्द सेठको तीन दिन बिना अन्न जलके बीत गये तब उन्होंने श्रीभक्तामरके १६ वां काव्यका स्मरण किया जिससे जम्बू देवीने प्रगट होकर कहा—

देवी— चौपाई।

कहो वच्छ जो इच्छा होय। ततछन काज करों मैं सोय॥

सुखानन्द—

रतन बदल औरहुने लये। हमकों नृप योंही दुख दये॥

तब तो देवी, सुखानन्दके सम्पूर्ण बंधन तोड़कर उन्हें उनके घर पर छोड़कर अपने स्थानको चली गई। कुछ दिनोंके बाद जब सुनारने सुखानन्द कुमारको घरपर बैठे देखा तब उसने राजासे कहा कि हे महाराज! क्या आपके सच्चे रत्न मिल चुके हैं जो सुखानन्दको छोड़ दिया है राजाने विस्मित होकर अपने मन्त्रीको सुखानन्दके घर भेजा और उन्हें पुनः पकड़ बुलाया तब देवीने पुनः प्रगट होकर सब कच्चा हाल कह सुनाया। जिससे राजाको बड़ा सन्तोष हुआ। सुनारको बहुत कड़ा दण्ड दिया। ठीक है देवता भी धर्मात्माओंके दास बनकर रहते हैं।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

भावार्थ—हे भगवान! अनन्त पदार्थोंको जानने वाला केवल ज्ञान जैसा आपको प्राप्त है वैसा हरिहर ब्रह्मा आदि देवताओंको

नहीं है। क्योंकि जैसा प्रकाश रत्नमणिमें स्फुरायमान होता है वैसा चमकते हुए भी कांचके टुकड़ोंमें नहीं होता।

२० ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाणं।

मंत्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः शत्रु भय निवारणाय ठः ठः स्वाहा।

विधि—पासमें यंत्र रखने और मन्त्रको १०८ वार जपनेसे सन्तानकी प्राप्ति होती है, लक्ष्मी मिलती है, सौभाग्य वढ़ता है, विजय लाभ होता है और वुद्धि वढ़ती है।

सेठ विष्णुदासकी कथा।

दक्षिण देशमें रतनावती नगरी प्रसिद्ध है। वहां अडोल नामके एक सेठ रहते थे जैन-धर्मपर उनका दृढ़ विश्वास था उनके एक पुत्र था, यद्यपि वह स्वरूपवान और शरीरसे सुदृढ़ था, परन्तु जैन-धर्ममें उसकी किञ्चित भी श्रद्धा नहीं थी—"लाल हुए तो क्या हुआ बिना बासका फूल" विष्णु-धर्ममें उसकी गहरी रुचि होनेसे पिताने उसका नाम विष्णुदास रख छोड़ा था।

चौपाई।

पूजा विष्णु तनी मन धरै। विष्णु विष्णु मुखतैं उच्चरै॥
मिथ्यातम छाये दृग दोय। देव अदेव न जानत कोय॥१॥

जीवतत्व जाने नहिं गूढ़। विन गुरु ज्ञान लखै क्यों मूढ़ ॥
विन गुरु पंथ बतावै कौन। विन गुरु नर सूकर* समतौन ॥२॥

दोहा।

गुरु माता गुरु ही पिता, गुरु बांधव संसार।
सरग मोक्ष तोऊ तनौं, पंथ दिखावन हार ॥१॥

एक दिन ईर्यापथ† शोधते हुए सकल संयमी मुनि महाराज रत्नावती नगरीमें विहार करते हुए निकले उन्हें सेठ अडोलजीने विनय पूर्वक पड़गाहा और सेठानी सहित दोनोंने नवधा भक्ति पूर्वक आहार दिया।

दोहा।

कर पग मीड़े साधुके, विनती करी बनाय।
अखै दान मुनिवर दियो, लीन्हों सीस चढ़ाय ॥

सेठ— सोरठा।

सुनो महामुनि साध. पुत्र एक मेरे घरे।
करै कुदेव अराध, मेरो बरजो ना रहे ॥१॥
मिथ्या तम संसर्ग, विष्णुदास करुणा तजो।
छोड़ो अपनो वर्ग, नाथ ताहि संबोधिये ॥२॥

---

* सुअर। † साढ़े तीन हाथ भूमि आगेकी निर्जीव देख लेना पीछे पैर धरना।

मुनि (बालकसे)— चौपाई।

क्यों तुम कहा पढ़े हौ वच्छ। हम आगे कीजे परतच्छ॥

विष्णुदास—

मैं तो सुगुरु पढ़ौ कछु नांह। विष्णु भगत मेरे मनमांह॥

मुनि—

पंच मिथ्यात मूलतें तजो। तब तुम एक विष्णुको भजो॥
जबलौं नहिं नाशें ये पंच। तबलौं विष्णु न जाने रंच॥

विष्णुदास—

स्वामी अब मैं भयो उदास। जिनमतको अति करौं प्रकाश॥
देव शास्त्र गुरु साखी भरौं। मैं मिथ्यात्व भूल नहिं करौं॥ ॥
जीव दया पालों ठहराय। हिंसा छोड़ी मन वचकाय॥
जिनवर धर्म मर्म समझाय। जिन दीक्षा दीजे गुरुराय॥२॥

मुनि—

दोष अठारह तें निरमुक्त। सोही देव निरंजन युक्त॥
दरशन विन उपजै नहिं ज्ञान। ज्ञान विना नहिं चारितजान॥१॥
चारित विना ध्यान नहिं होय। ध्यान विना नहिं शिवपद कोय॥
दरशन ज्ञान चरन चितलाय। गहो महा समकित दृढ़ पाय॥२॥

विष्णुदास—

अब गुरु तुम इतनों जस लेव। एक ज्ञान हमको तुम देव॥
जातें अद्भुत कौतक होय। जैन धरम जाने सब कोय॥१॥

मुनि—

अहो वच्छ तुम नीकी कही। लेहु मंत्र तुम साधौ सही॥
जो वाको निहचैं आदरौ। ताको मन वांछित फल वरौ॥१॥

मुनि महाराज, भक्तामरजीका २० वां काव्य उसे विधि पूर्वक सिखाकर बिहार कर गये। एक दिन राजा सिंघसेनने विष्णुदासको बुलाकर कहा कि आपको मंत्र विद्यामें प्रवीण सुना है कोई चमत्कार दिखाइये। भृगुकच्छ नरेशके यहां अष्ट-सिद्धियां हैं उन्हे विद्याबलसे बुलवाइये। विष्णु-दासने घरपर जाके मन्त्रकी आराधना शुरू कर दी तो आंधी रात्रिको भृकुटी देवीने प्रगट होकर कहा—

देवी—मांग मांग जो इच्छा तोह।
विष्णु—अष्ट सिद्धियां लाओ मोह॥

तब देवी चौल देशको गई और आठों सिद्धियां* लाकर राजाके सिरहाने रख दी, लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। राजाने विष्णुदास पर बड़ी प्रस-न्नता प्रगट की उन्हें अपना आधा राज्य दे दिया और अपनी प्यारी कन्या उन्हें ब्याह दी।

---

* ये सिद्धियां धन, धान्य, रत्नहार, हेमपात्र, आदि अटूट सामग्री देती हैं विषनाश करनी मन्द सुगन्ध पवन चलाने वाली होती हैं।

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥

भावार्थ—हे नाथ ! मैं हरिहर आदि देवताओंका देखना ही अच्छा मानता हूं क्योंकि, उनके देखनेसे मन आपमें संतोष पाता है परन्तु आपके देखनेसे क्या ? जिससे कि कोई अन्य देवता जन्मान्तरमें भी मनको हरण नहीं कर सकता। सारांश—आपके देखनेसे दूसरोंमें चित्त नहीं जाता, यह हानि है और दूसरोंके देखनेसे आपमें संतोष होता है, यह लाभ है। यह व्याज निन्दा, व्याज स्तुति अलंकार है।

२१ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्णसमणाणं।

मंत्र—ॐ नमः श्रीमणिभद्र जय विजय अपराजित सर्व-सौभाग्यं सर्व सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—मन्त्रको ४२ दिनतक प्रतिदिन १०८ बार जपनेसे और पासमें यंत्र रखनेसे सब अपने आधीन होते हैं।

सेठ श्रीधर और रूपश्रीकी कथा।

मुनि—
अहो वच्छ तुम देशमें विशाला नामकी एक नगरी जो वाको निहचन्द्रजी नामके एक सेठ रहते थे।

पुन्योदयसे उन्हें एक पुत्र हुआ था जिसका नाम श्रीधर था, जब वह विद्याध्ययनके योग्य हुआ तब उसने गणित, साहित्य, छन्द, व्याकरण आदि विद्याओंके सिवाय मन वांछित फलदायक श्री भक्तामरजीका भी अभ्यास किया था। सेठ नामचन्द्रने प्रिय श्रीधर कुमारका विवाह रूपश्री नामकी एक सेठ कन्याके साथ कर दिया था, वह कन्या नामके सिवाय रूपकी जैसी रूपश्री थी वैसे ही जैन-धर्म और सदाचारसे भी सम्पन्न थी।

चौपाई।

एक दिवस बरसा अति घोर। मूसलधार गिरै जल जोर॥
अंधकार व्याकुल सब भयो। दिनकर क्रांत सूर्य छिपगयो॥१॥
पृथ्वी सकल जलामय भई। तर्जित तर्जि भयानक ठई॥
दामिन दमके अति भयभीत। बाढ़ बहै भारी विपरीत॥२॥

दोहा।

श्रीधर सों कह रूपश्रि, चलो देवालय जाय।
आठों द्रव्य संजोयकें, पूजें श्रीजिन राय॥१॥
श्रीधरने उत्तर दियो, देखतकै कछु नांय।
कछू दृगन सूझत नहीं, किमि जिन बंदन जांय॥२॥

रूपश्री— अडिल्ल।

जो लौं श्रीजिनवरकी, वसु बिधि पूजा ना करौं।
तो लौं मैं जल अन्न, नेकु ना आदरौं॥

श्रीधर—

जल सौं कहा बसाय, रि मूरख बावरी।
छोड़ौ हठ वर नारि, कुमति क्यों आदरी ॥१॥

रूपश्री— सोरठा।

प्रान जाय तो जाय, लई प्रतिज्ञा न टरे।
सुनो कंत चित लाय, इस तनकी आशा कहा ॥२॥

तब श्रीधरने शरीर शुद्ध करके पद्मासन बैठकर मन्त्र आराधना शुरू कर दी तो मोरा देवीने प्रगट होकर कहा—

देवी— चौपाई।

कह कह रे श्रीधर सुखदात। कारण कौन कियो अवदात ॥
इच्छा हो सो पूरन करौं। तेरे मनको संशय हरौं ॥१॥

श्रीधर—

श्रीजिन पूजाकी विधि नांय। कैसेके जलपान करांय ॥
यामें विलम न कीजे माय। श्री जिन दरशन वेग कराय ॥१॥

तब देवीने बहुत ही सुन्दर मायामई रतनरचित विमान सजकर दोनोंको बैठाया और पवनगामी गतिसे शीघ्र ही जिन चैत्यालयको ले गई। दोनों नर-नारीने भक्तिभाव समेत जिन बन्दना और अष्ट द्रव्यसे पूजा की। वहां सकल परिग्रह

के त्यागी दिगम्बर मुनिराजके दर्शन हुए तब श्रीधरने सविनय निवेदन किया कि—

श्रीधर— चौपाई।

ऐसो व्रत उपदेश मोय। जातें दुहू लोक फल होय॥

मुनि—

अहो वच्छ सुनियो दे कान। पंच कल्याणक व्रत परधान॥
रिद्धि सिद्धि धन जातें होय। अंतकाल अमरा पति सोय॥१॥

श्रीधर —

कैसी विधि हम पालें जाय। सो गुरु हमको देहु बताय॥
किस दिन कौन मास किहधरी। सो गुरु हमें बताओ खरी॥२॥

मुनि—

तुम कीजो यह बारह मास। मन वांछित फल पुजवे आस॥
चार बीस तीर्थंकर भये। तिनके पंच कल्याणक थये॥३॥
गर्भ जनम तप ज्ञान निर्वान। तिनको तिथि लीजे शुभ मान॥
कल्याणक दिन जब जब होय। तब तब व्रत कोजे भविलोय॥४॥
बरस एक में पूरो होय। जनम जनमको पातक खोय॥
पुनि ताको उद्यापन करे। नातर व्रत दूनो आदरे॥५॥

मुनिराजके उपदेशको दोनोंने शिरोधार्य करके पंचकल्याणक व्रत उद्यापन सहित किया और सदा धर्ममें सावधान रहे। आयुके अन्तमें समाधि पूर्वक देह छोड़कर देवलोक गये।

चौपाई।

इहि विधि और करे जो कोय। ऐसे फलको प्रापत होय।
जो मिथ्याती निन्दैं याह। घोर नरक कुंडनमें जाय ॥१॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

भावार्थ — हे भगवान्! सैंकड़ों स्त्रियां सैंकड़ों पुत्रोंको उत्पन्न करती हैं, परन्तु आप जैसा पुत्र आपकी माताके सिवाय अन्य स्त्री नहीं जन सकती। क्योंकि सम्पूर्ण दिशाएं नक्षत्रोंको धारण करती हैं, परन्तु प्रकाशवान सूर्यको पूर्व दिशा ही धारण करती है।

२२ ऋद्धि – ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगासगामिणं।

मंत्र—ॐ णमो वीरेहि जृंभय जृंभय मोहय मोहय स्तंभय स्तंभय अवधारणं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—डाकिनी, शाकिनी, भूत, पिशाच, चुड़ैल जिसे लगी हो उसे मन्त्र द्वारा हल्दीकी गांठको २१ बार मंत्र कर चबानेसे और गलेमें यंत्र बांधनेसे उक्त सब प्रकारके दोष मिटते हैं।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः॥२३॥

भावार्थ—हे मुनीन्द्र! साधु महात्मा लोग आपको परम पुरुष अत्यन्त निर्मल और अन्धकारके समक्ष सूर्य स्वरूप मानते हैं। वे साधु तुम्हें भले प्रकार प्राप्त करके मृत्युको जीतते हैं इस लिये आपके सिवाय कोई दूसरा मोक्षमार्ग नहीं है।

२३ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसीविसाणं।

मंत्र—ॐ नमों भगवती जयावती मम समीहितार्थं मोक्ष सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—पहिले मंत्रको १०८ वार जपकर अपने शरीरकी रक्षा करें पश्चात् जिसे प्रेत बाधा हो उसे झाड़े और यंत्र पास रक्खे। इससे प्रेत बाधा दूर होती है।

सेठ पुत्र महीचन्द्रकी कथा।

भारतवर्षमें उज्जैन नगर प्रसिद्ध है किसी समय वहां राजा श्रीचन्द्र राज्य करते थे वे बड़े न्यायशील, जैन-धर्मी और प्रजा पालक थे, उस नगरमें मतिसागर नामके एक सेठजी थे वे बड़े ही

अनुभवी ओर विद्वान थे, राजाने उन्हें मन्त्रीका काम सौंप रक्खा था। मतिसागरको एक पुत्र था उसका नाम महीचन्द्र था। राजा श्रीचन्द्रने एक दिन प्रिय महीचन्द्रको बच्चोंके साथ खेलते देखा तब उन्होंने मतिसागर मन्त्रीसे कहा—

राजा— चौपाई।

बालक खेले अरु कछु पढ़े। पढ़ लिखकर धन सुखसे बढ़े॥
विन विद्या शोभा नहिं कही। तातें बाल पढ़ाओ सही॥

दोहा।

मतिसागरने पुत्रको, गुरु पै सौंप्यो जाय।
तुम उपगार करो प्रभु, विद्या देहु पढ़ाय॥

बालक थोड़े ही दिनोंमें निपुण हो गया उसने लौकिक और धार्मिक दोनों प्रकारकी योग्यता प्राप्त कर ली और भक्तामरका तो वह पूरा ही भक्त हो गया था, जब महीचन्द्र पढ़-लिख कर होशियार हो गया और राजाके दरबारमें गया तो राजाने गोदमें बैठाकर कुशल-क्षेम पूछी—

राजा— सोरठा।

राजा गोद लगाय, बैठारो अति प्यारसों।
बहुविधि प्रेम बढ़ाय, कहो पुत्र तुम क्या पढ़्यो॥१॥

बालक—

प्रथम मंत्र नवकार, ता पीछैं विद्या सबै।
भव भय भंजन हार, भक्तामर स्तोत्र शुभ ॥२॥

राजा श्रीचन्द उस बालककी विद्यामें उन्नति देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बहुत सी भेंट सेठ पुत्र महीचन्द्रको दी।

वहां उज्जैनमें एक चण्डी देवीकी मढ़िया थी, सायंकालमें उस मढ़ियाके समीप ही एक दिगम्बर मुनिराज आ विराजे और कमलासन आसीन हो कर ध्यानमें लीन हो गये।

चौपाई।

आधी रात बीत जब गई। तब ही चण्डी कोपित भई ॥
मुंड माल आलंकृत गले। कर त्रिशूल मुख ज्वाला जले ॥१॥
अस्थि चर्म आभूषण अङ्ग। भूत पिशाच लिये सरवंग ॥
जिन मुनि जबही देख्यो जाय। कुपित अङ्ग तन उठी रिसाय ॥२॥

देवी— चौपाई।

अरे दुष्ट तपसी मति हीन। मेरे थान जोग क्यों दीन ॥
मैं सबको मदभंजन हार। तू क्यों आयो मुझ दरबार ॥१॥

अधिक क्या लिखें उस पिशाचिनीने उन निस्पृह महात्माजीके ऊपर सिंह, बाघ, छोड़े अग्नि बरसाई और भारी उपसर्ग किया। पर वे धीर-

वीर मुनिराज अपनी ध्यान और मुद्रासे विलकुल ही न डिगे। जब राजा श्रीचन्द्रको यह समाचार मिला तब उन्होंने प्रिय महीचन्द्रको बुला कर कहा कि इस उपद्रवके शान्त करनेको तुम्हीं समर्थ हो, तब महीचन्द्रने मुनि महाराजके समीप ही एकान्त स्थानमें बैठकर २२ और २३ जुगल काव्यका आराधन किया, तब मानस्थंभिनी देवीने प्रगट हो कर कहा—

देवी— चौपाई।

कहुरे वच्छ सु कारन कौन। मोको आकर्यो धरि मौन॥
कारज होय सो देहु बताय। मन वांछित फल पुजवूं आय॥१॥

महीचन्द्र—

मुनि उपसर्ग होत है घनौ। तुरत उपाय करो तिहितनो॥
चण्डीको दल देखो जाय। ताको माता करो उपाय॥२॥

देवी—

तव देवी बोली रिस भरी। मानसथंभनी हौं मैं खरी॥
मेरे आगे काकौ मान। छिनमें जाय करूं घमसान॥३॥

वह मानस्थंभिनी देवी भीमनाद करती हुई जब चण्डिका देवी पर गई, तब तो चण्डिकाके हाथसे हथियार छूट पड़े भून, प्रेतोंको भागनेकी पड़ गई और सिंह बाघ तो शृगालके समान दुम दबाके खड़े रह गये।

चण्डी— चौपाई।

शरण तुम्हारो लीनों माय। अवकैं यह अपराध क्षमाय॥
दो कर जोर सो विनती करे। फिर फिर चंडी पायन परे॥१॥

इतनेमें सवेरा हो गया और मुनि महाराजका मौन खुला तब मुखचन्द्रसे अमृतवाणीमें कहने लगे हे देवी! इसमें चण्डीका दोष नहीं है इसमें अन्तरंग कारण हमारा असाता कर्म है यह वेचारी चण्डी तो वाह्य निमित्त मात्र है इसे दया कर छोड़ दो।

कृपालु मुनिराजके कहनेसे देवीने चण्डीको छोड़ दिया और निज स्थानको गई। चण्डीने मुनिराजके उपदेशसे जैन-धर्मका सम्यग्दर्शन अङ्गीकार किया, राजाने महीचन्द्र कुमारको गलेसे लगा लिया और वड़ी प्रशंसा की।

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम्।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः॥२४॥

भावार्थ—हे प्रभो! सन्त पुरुष आपको अक्षय, अचिन्त्य असंख्य* आदिनाथ, समर्थ, निष्कर्म, ईश्वर. अनन्त, कामनाशक, योगीश्वर, प्रसिद्धयोगी, अनेक रूप† एक स्वरूप, और ज्ञान स्वरूप निर्मल कहते हैं।

२४ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाणं।

मंत्र—स्थावर जंगम वायकृतिमं सकलविषं यद्भक्तेः अप्रणमिताय ये दृष्टिविषयान्मुनीन्ते वड्ढमाणस्वामी सर्वहितं कुरु कुरु स्वाहा। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः अ सि आ उ सा झ्रां झ्रौं स्वाहा।

विधि—मन्त्र द्वारा २१ बार राख मन्त्रित करके दुखते हुए सिरपर लगानेसे और यन्त्र पास रखनेसे सिरकी सब पीड़ाएं दूर होती हैं। प्रतिदिन १०८ बार मंत्र जपना चाहिये।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधा-
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्।
धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्-
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि॥२५॥

भावार्थ—हे भगवान! देवताओंने आपके केवल ज्ञान बोधकी पूजा की है इसलिये आप ही बुद्ध देव हो। त्रैलोक्यके जीवोंके

---

* असंख्य गुणों वाले। † गुण पर्य्यायकी अपेक्षा अनेक रूप और जीव द्रव्यकी अपेक्षा एक वा अद्वितीय।

कल्याणकर्ता हो इसलिये आप ही शङ्कर हो। मोक्ष मार्गकी विधिका विधान करनेके कारण आपही विधाता हो। और पुरुषोंमें उत्तम होनेके कारण आप ही पुरुषोत्तम वा नारायण हो।

१५ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गतवाणं

मंत्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा झ्रां झ्रौं स्वाहा। ॐ नमो भगवते जयविजयापराजिते सर्वसौभाग्यं सर्वसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—इस ऋद्धि मन्त्रकी आराधनासे और पासमें यन्त्र रखनेसे नजर उतरती है और अग्निका असर आराधक पर नहीं होता।

राजा जितशत्रु की कथा।

भरतखण्डमें कौशाम्बी नगरी श्री पद्मप्रभु जिनराजके गर्भ, जन्म कल्याणसे प्रसिद्ध है। वहां किसी समय राजा जितशत्रु हो गये हैं उनकी पटरानी जिनदत्ता समेत ३६ रानियां थीं सभी यौवन और सौन्दर्य संपन्न थीं।

एक समय वसन्त ऋतु थी, होलीके दिन थे, वनस्पतियां पतझार होकरके पुनः हरी भरी हुई थीं, गुलाब फूल रहे थे, कोयलकी कूक और पवन के झोंके कामियोंको उन्मत्त करते थे। महाराजा जितशत्रुको भी वन क्रीड़ाकी सूझी और अपनी

सम्पूर्ण रमणियोंको लेकर बगीचेमें गये, सो उनकी रसीली सब रानियोंने खूब फाग मचाई। अबीर, गुलाल, चंदन, केशर, कज्जल, कुंकुमकी खूब भरमार की और राजाको अच्छी तरह फागमें राजी किया। उन्हें अपनी पिचकारीका निशाना बनाया और ऊपरसे फगुवाका दावा किया। परन्तु रागके बिना फागकी समाप्ति नहीं होती इसलिये—

बांसुरि ताल मृदंग चंग डफ बाजहीं।
गावहिं सरस धमार, मधुर ध्वनि साजहीं॥
नाचहिं नागर नारि, सुमन मनोकिन्नरी।
हाव भाव चित चाव, दिखावें भिन्नरी॥१॥

महाराज कौसांबी नरेश वन क्रीड़ासे सफलता पूर्वक लौटे जा रहे थे कि मार्गमें वहांके वन देवताने सब रानियोंको विह्वल कर दिया।

दोहा।

सबको लागो प्रेत जब, खेलें तब बेहाल।
और समय औरहिं भयो, करी महा विकराल॥

चौपाई।

कैयक भई फिरें बावरी। प्रेत नाथ उनकी मतिहरी॥
कैयक बैठ रहीं वन मांह। जिनकों तनमनको सुधिनांह॥१॥
कैयक गावें कैयक हंसें। कैयक लोट धरनि तन घिसें॥२॥

कैयक शब्द करें विकराल। कैयक रोवत हैं वेहाल॥
कैयक फेकें सिरपर धूर। वनके वृक्ष करें चकचूर॥३॥

पाठक! पूछो तो अब ही वास्तविक फाग हुई थी। राजा जितशत्रु यह लीला देखकर अवाक हो रहे थे इतनेमें वहांके एक प्रसिद्ध सेठ उनसे मिले।

सेठ— चौपाई।

महाराज काहे दिलगीर। ऐसी कहा परी है पीर॥
जा कारन ऐसे अनमने। सो तो वात कहत ही वने॥१॥

राजा—

कहा कहैं कछु कहिय न जाय। हमकों प्रेत दीनों दुख आय॥
रानी सकल भई वावरी। तातैं गति मति मेरी हरी॥१॥

सेठ—

शान्तिकीर्ति वनमें मुनिराय। तिनके पास इन्हें ले जाय॥
मुनिके दर्शन पाप पलांय। सकल सांकरे छिनमें जांय॥१॥

राजाने वैसा ही किया और उन शांति चित्त शांतिकीर्ति स्वामीकी सेवामें सबको ले गये और विनय पूर्वक सब निवेदन किया। उन निर्विकार मुनिराजने थोड़ासा पानी लेकर २४ और २५ वें जुगल काव्य पढ़के थोड़ा थोड़ा सवपर सींच दिया। वाहरे पवित्र जैन धर्म! और वाहरे भक्तामर काव्य! वे सब रानियां जिनके जीवनकी राजा

आशा छोड़ चुके थे सचेत हो गई। तब राजाने मुनिराजकी बड़ी स्तुति की।

चौपाई।

धन्य धन्य स्वामी मति धीर। महिमा सागर गुन गंभीर॥
धन्य जैनमत इह संसार। सब पाखंड निवारन हार॥१॥
धन वह गुरु धन्य वह देव। जाकी मुनि तुम कीन्हीं सेव॥
जो मैं जीभ सहस उच्चरौं। तोहू तुम गुन पार न परौं॥२॥
अब स्वामी इतनौ जस लेहु। मन्त्र एक हमहू को देहु॥
जातें उतरौं भवदधि पार। बहुरि न दुख देखौं संसार॥३॥

मुनिराजने राजाको जुगल काव्य सिखा दिये और धर्मोपदेश देते हुए यह कहा—

जिनकी पूजा मुनिको दान। ये दोऊ हैं मुक्ति निधान॥
अरु नवकार विसर नहिं जाय। जो मंगलमय मंगलदाय॥१॥

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिन भवोदधिशोषणाय॥२६॥

भावार्थ—हे त्रैलोककी पीड़ा हरण करने वाले, तुम्हें नमस्कार है। हे पृथ्वी तलके निर्मल अलंकार! तुम्हें नमस्कार है। हे त्रिलो-

कीनाथ! तुम्हें नमस्कार है। हे संसार समुद्रके सोखने वाले! तुम्हें नमस्कार है।

२६ ऋद्धि – ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्त तवाणं।

मंत्र—ॐ नमो ह्री श्री क्लीं ह्रूं ह्रूं परजनशान्ति व्यवहारे जयं जयं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि ऋद्धि मन्त्र द्वारा १०८ वार तैल मन्त्रित करके सिर पर लगानेसे और यन्त्र पास रखनेसे आधा सीसी आदि सिरके सब रोग मिट जाते हैं।

धनमित्रकी कथा।
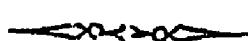
सुभद्र देशमें वराश नामकी नगरी थी।

चौपाई।

वन उपवन करि शोभित खची। सुरपुर मनहुं विधाता रची॥
नगर लोग सब ही धनवन्त। एक एकतें बड़े महन्त॥ १॥
मन्दिर शोभित बने बजार। माणिक चौक सो परम उदार॥
पौन छत्तीस प्रजा सब सुखी। अपने करम जोग कोउ दुखी॥२॥

उस नगरमें धनमित्र नामका एक भिखारी रहता था नितान्त दरिद्रताके कारण वह झूठन भी खाने लगा था तौभी भरपेट भोजन नहीं मिलता था। एक दिन वह वनमें गया और एक मुनिराजके दर्शन हुए। विचारे धनमित्रसे नहीं

रहा गया वह उन महात्माजीके चरणोंमें लेट गया और रोते रोते कहने लगा—

धनमित्र— चौपाई।

स्वामी! कौन पाप हम करौ। जा सेती इतनौ दुख भरौं॥
अति दरिद्र दावानल भयो। धर्म वृक्ष सब ही जर गयो।१॥
अन्न वस्त्र बिन मैं बिल्लात। यह अतिकष्ट सहो नहिं जात॥
तातें दुख नाशनके काज। अब तुम मुनिवर करो इलाज॥२॥

मुनीश्वर— चौपाई।

दारिद् नाशनको जु उपाय। सुन हो भव्य कहों समझाय॥
भक्तामरको काव्य सहाय. पढ़ौ छत्तीसम प्रीत लगाय॥१॥
शील रतन पालो तुम सोय। रिद्धि सिद्धि जातें घर होय॥
परतियको कीजे परित्याग। अपनी तियसों ही अनुराग॥२॥

कृपालु मुनि महाराजने उस जन्म दरिद्री धनमित्रको सिखा दिया तो उसने शरीर शुद्धि करके जिनमन्दिरजीमें चौकी पर बैठकर जपना शुरू कर दिया। ज्यों ज्यों रात्रि गिरती जाती थी त्यों त्यों ही धनमित्रको मन्त्र जपनेमें रस आता था। जब जाप पूरा हो गया तब एक देवी नागकुमारीका सुन्दर रूप धारण करके धन-मित्रके शीलकी परीक्षा करनेको आई और कहने लगी—

नागकुमारी— चौपाई ।

इन्द्र लोकतें मैं अवतरी । रे धनमित्र तोहि आदरी ॥
जो तू देहि मोहि रति दान । तो मैं करूं सकल कल्यान ॥१॥

धनमित्र— चौपाई ।

कुलवन्तनको नाहीं जोग । पर बनिता सों माने भोग ॥
चाहे कोटिन करो उपाय । मोतें शील न खंडो जाय ॥२॥

नागकुमारीने धनमित्रके साथ नाना चेष्टाएं कीं, परन्तु वे सब व्यर्थ हुईं, धनमित्रके सुमेरु चित्तको चंचल न कर सकीं । अन्तमें वह अन्तर्द्धान हो गई और परम धीर-वीर धनमित्र उपसर्ग विजयी हुआ तो कमलकांत देवोने प्रगट हो कर कहा—

देवी— चौपाई

मांग मांग रे सुनरे वच्छ । अब मैं तोहि भई परतच्छ ॥
जो वर मांगे सो वर देऊं । भई किंकरी सोई करेऊं ॥१॥

धनमित्र—

मेरो दुख दारिद्र हरो । अति धनवन्त सुखी मुह करो ॥

देवी—एवमस्तु ! तथास्तु !! तेरे मन मनोर्थ पूर्ण होंगे ।

देवी आशीर्वाद देकर देवलोकको गई और धनमित्र घरको आया तो घरका कुछ निराला ही

हाल देखा वह पहचान भी न सका कि यह मेरा घर है। इसके शरीरके वसन भूषणसे लोग भी न पहचान सके कि यह धनमित्रही हैं। पड़ोसियोंसे इन्होंने पूछा कि यहां कहीं एक धनमित्र नामका भिक्षुक रहता था उसका घर कौन है? लोगोंने उत्तर दिया कि इसी भूमिपर धनमित्रजी की झोपड़ी थी जो अचानक ऐसी उन्नत दशाको प्राप्त हुई है, इतनेमें उनकी सौभाग्यवती स्त्री जो सदा चिथड़े पहने रहती थी.इस समय सज-धजके निकल आई। तब धनमित्रजीने सब हाल देवीकी कृपाका सुनाया और धनमित्रजीसे धनने पूरी मित्रता कर ली। ब्रह्मचर्य्याणु व्रतधारी धनमित्रने पूजा प्रतिष्ठा शास्त्रदान और दान-पुन्यमें बहुतसा धन खरच किया।

धर्मके प्रसादसे मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त होती है फिर इस क्षणिक और चंचल धनका प्राप्त हो जाना तो सहज सी बात है।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश।

दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

भावार्थ—हे मुनीश ! यदि सम्पूर्ण गुणोंने सघनतासे आपका आश्रय ले लिया. और अनेक देवोंके आश्रयसे जिन्हें घमण्ड हो रहा है, ऐसे दोषोंने आपकी तरफ यदि स्वप्नमें भी कभी नहीं देखा तो इसमें अचरज भी क्या है ? कुछ नहीं ।

२७ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्ततवाणं ।

मंत्र—ॐ नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी चक्रेणानुकूलं साधाय साधाय शत्रूनुन्मूलयोन्मूलय स्वाहा ।

विधि—ऋद्धि मन्त्रकी आराधना और यन्त्र पास रखनेसे आराधकको कोई भी शत्रु हानि नहीं पहुंचा सकता ।

राजा हरिश्चन्द्रकी कथा ।

गोदावरी नदीके तीरपर किसी समय चन्द्रकान्तपुर नगर बसता था वहां राजा हरिश्चन्द्र रहते थे । उनकी स्वरूपवती और चन्द्रवदनी भार्याका नाम चन्द्रमती था । दोनों दम्पत्तिका ऐसा गाढ़ स्नेह था मानों राम जानकी ही हो ! यह सब था, परन्तु सन्तानके अभावमें वे दोनों सदा उदास रहते थे । ठीक है—

चौपाई।

विना पुत्र घर सूनो लगै। विना पुत्र कुल कैसे जगै।
विना पुत्र धग जीवन नार। विना पुत्र तिय आवै गार ॥१॥

एक दिन रानी चन्द्रमतीसे न रहा गया और और महाराज हरिश्चन्द्रको अपने मनकी चिन्ता सुनाई।

दोहा।

यह सुन नृप हरिचन्द कौ, बदन गयौ कुम्हलाय।
जैसे अंबुज* नीर बिन, रहौ होय मुरझाय ॥१॥

तबसे राजा हरिचन्द्रको यह गहन चिन्ता व्यापने लगी थी, एक दिन वे अपने मन्त्री वर्ग समेत राज सभामें बैठ हुए थे कि इतनेमें एक मन्त्रीने पूछा—

मन्त्री अडिल्ल।

देश कोष गढ़ दुर्ग, सुर्ग सम हैं घने।
सेना सुभट सुरंग, अंग शोभा बनै ॥
चन्द्र मुखी बर नारि, वारि रति डारिये।
ऐते पै दिलगीर सु, नृपति उचारिये ॥१॥

---

* कमल।

राजा— सोरठा।

तुम पूछी धरि नेह, चितकी चिन्ता मैं कहूँ।
सुत बिन सूनों गेह, यातें हम दिलगीर हैं ॥१॥

मंत्री— चौपाई।

महाराज विनती चित्त धरों। चित्तकी यह चिन्ता परिहरों॥
याको अब हम करत इलाज। मन वांछित हुहै सब काज ॥२॥

मन्त्री अपने घरपर गया और कुशाकी* आसनपर बैठकर पिशाचिनीका स्मरण करने लगा। थोड़ी ही देरमें पिशाचीने प्रगट होकर मन्त्रीसे आराधनाका कारण पूछा—

मंत्री— चौपाई।

तुम माता इतनों जस लेहु। राजाके घर संतति देहु॥
ऐसो माता करो उपाय। जातें राजा को दुख जाय ॥१॥

देवी— चौपाई।

श्रुतिकीरति मुनिवर इक रहैं। इन्द्रिय पांच आपनी दहैं॥
वे उपदेश देहिं कछु जबै। रानीके सुत उपजै तबै ॥१॥

यह सुनकर मंत्री बहुत प्रसन्न हुआ और राजा हरिच्चन्द्रसे पिशाचिनी सम्बन्धी सब वृतान्त कह सुनाया और राजा रानीको साथ लेकर मुनिराजकी सेवामें गये और उन्हें जो लगन लगी थी

---

* कांस।

सो मुनिराजसे निवेदन किया। तब मुनीराजने श्री भक्तामरजीका २७ वां काव्य विधि समेत सिखा दिया। मुनिराजसे आज्ञा लेकर वे घर आये और राजाने रात्रिको मन्त्रकी आराधना की जिससे धृत देवीने प्रगट होकर कहा—

देवी— चौपाई।

मांग मांग जो इच्छा होय। मन वांछित मैं पुजऊं तोय॥
जो वर मांगे सो वर लेह। या मैं मति मानों संदेह॥१॥

राजा—

जननी! सुतकी इच्छा मोह। ता कारण आराधी तोहं॥
तो प्रसादतें संतति होय। जैन धरम व्रत धारी सोय॥१॥

देवी—

इतने काज बुलाई मोय। मांगत लाज न आई तोय॥
कितक बात तुम मांगी राय। ह्वै है संतति अति सुखदाय॥१॥

देवी आशीर्वाद देकर चली गई और नौवें महीने महारानी चन्द्रमतीके गर्भसे महा प्रताप वान कान्तिवान पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ जिसे पाकर राजा रानी और सब लोग बहुत सुखी हुए।

धर्मके प्रसादसे मोक्ष फलकी प्राप्ति होती है,

पुत्र भलकी प्राप्ति होना तो एक मामूली सी बात है—

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥२८॥

भावार्थ—ऊंचे अशोक वृक्षके आश्रयमें स्थिर और ऊपरको ओर निकलती हैं किरणें जिसकी, ऐसा आपका अत्यन्त निर्मल रूप सूर्यके बिम्बके समान शोभित होता है। कैसा है सूर्य ? स्पष्ट रूप जिसकी किरणें फैल रही हैं, अन्धकारके समूहको जिसने नष्ट किया है और मेघ जिसके पासमें हैं। अभिप्राय यह कि, बादलोंके निकट जैसे सूर्य शोभता है वैसे ही आप अशोक वृक्षके नीचे शोभायमान होते हैं। (भगवानके आठ प्रातिहार्योंमेंसे पहिले प्रातिहार्यका वर्णन इस श्लोकमें किया है।)

२८ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो महातवाणं।

मंत्र—ॐ नमो भगवते जय विजय जृंजय मोहय मोहय सर्व सिद्धि सम्पत्ति सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—उक्त रिद्धि मन्त्रको आराधनासे और मन्त्र पासमें रखने से सब कामें सिद्ध होते हैं, व्यापारमें लाभ होता है, विजय होती है।

रूपकुण्डलीकी कथा।

दक्षिण देशमें धरापुरी नगरी थी वहांके राजा पृथ्वीपाल थे। उनके सात पुत्र और एक कन्या थी, कन्या बड़ी ही रूप और लावण्य सम्पन्न थी।

चौपाई।

ता राजाके पुत्री एक। रूप कला गुण परम विवेक॥
रूप कुंडली वाको नाम। रूप निरखि लज्जित भयो काम॥१॥
वदन चन्द्रमाके आकार। दृग हैं मृगिनीकी अनुहार॥
चंपा कृत भौंहें दो वनी। दशन जोति लज्जित दामिनी॥२॥
कंवु कंठ कटि है अति छीन। गजगामिनी भामिन गतिलीन॥
कामलतासी ताकी देह। कञ्चन वदन अङ्ग सव गेह॥३॥
नव जोवनमें पहुंचो आय। मनों विधाता रची वनाय।
अपनो रूप देखके सोय। तृनसम ओर गिनैं सवलोय॥४॥

एक दिन वह सखियोंको साथ लेकर वगीचेको गई और वहां नग्न दिगम्बर मुनिराजको देखा। उन्हें देखकर यह बहुत ही क्रोधित हुई और बहुत से निन्दाके वचन कहने लगी—

रूपकुण्डली— चौपाई।

अरे निर्लज्ज तजी तैं लाज। रूप कुरूप धरैं किहि काज॥
मलिन अङ्ग अरु मुड़ी मूंड़। महा अमंगलकारी मूढ़॥१॥

उस नीच रूपकुण्डलीने रूप और सत्ताके अभिमानमें आकर उन परम तपस्वी महात्माजी-की घोर निन्दा की, परन्तु उन वनविहारी संतजीने एक शब्द भी नहीं कहा। पर हां! उस नीच की पतित आत्मा पाप कर्मके बन्धसे ढँक गई। परिणाम भी यह हुआ कि थोड़े ही दिनोंमें वह रूपकुण्डली, कुरूपकुण्डली हो गई। वह उदम्बर कोढ़से ग्रसित होई, शरीरके रोम खिर गये, हाथ पांव गल गये और बड़ी दुर्दशा हुई।

दोहा।

तब कन्या मनमें लखी, मुनि निन्दा मैं कीन।
तातैं मैं कुष्टिन भई, महापाप सिर लीन ॥१॥
अब मैं मुनि पै जाय कें, क्षमा कराऊं दोष।
वे करूणाके सिन्धु हैं. तुरत करेंगे मोक्ष ॥

वह रोती बिलखती पश्चाताप करती हुई मुनि महाराजके पास गई और सब दुःख सुनाया। समदर्शी मुनिराजने उसे जैन-धर्मका उपदेश दिया और सम्यग्दर्शन अंगीकार कराके श्रीभक्तामरजी का २८ वां काव्य सिखा दिया। वह रूपकुण्डली मुनि महाराजको नमस्कार करके घरको चली आई और तीन दिन रात काव्यकी आराधनाकी।

चौपाई।

भोर होत उठ देखे जबै। देही सुन्दर दीसै तबै॥
मातु पिता जब देख्यौ रूप। तब मनमें आनन्दौ भूप॥

कन्यासे सब हाल जानकर राजा रानीका जैन धर्म पर और भी अटल विश्वास हो गया। उन्होंने रूपकुण्डलीका ब्याह गुणशेखर नामके एक सदगुणी राज-पुत्रके साथ करना चाहा परन्तु उसके हृदय पर तो मुनिराजका उपदेश अंकित हो गया था उसने विवाह नहीं कराया। तब वह पिहिताश्रव मुनिके पास अर्जिकाके व्रत धारण करके आयुके अन्तमें सन्यास पूर्वक शरीर छोड़कर सौधर्म स्वर्गको गई।

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः॥२९॥

भावार्थ—हे भगवान! मणियोंकी किरण पंक्तिसे चित्र विचित्र सिंहासन पर आपका सुवर्णके समान मनोज्ञ शरीर सूर्यके समान

शोभायमान होता है। कैसा है सूर्य? आकाशमें ऊंचे उदयाचल पर्वतके शिखरपर किरण रूपी लताओंका जिसका चंदोवा तन रहा है। अभिप्राय यह कि, जैसे उदयाचल पर्वतके शिखरपर सूर्य बिम्ब शोभा देता है उसी प्रकार मणि जटित सिंहासन पर आपका शरीर शोभायमान होता है। (यह दूसरे प्रातिहार्यका वर्णन है)।

२९ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर तवाणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं णमो णमि ऊण पासं विसहर फुलिंगमंतो विसहर नाम रकार मंतो सर्व सिद्धिमी हे इह समरंताण मण्णे जा गई कप्प दुमच्चं सर्व सिद्धिः ॐ नमः स्वाहा।

विधि—उक्त रिद्धि मन्त्र द्वारा १०८ बार पानी मन्त्र कर पिलानेसे और मन्त्र पास रखनेसे दुखती हुई आखें आराम होती हैं।

रानी जयसेनाकी कथा।

दीक्षण देशमें अलंकापुरी नामकी एक नगरी थी वहां राजा जयसेन राज्य करते थे वे सच्चे जैन-धर्मी और पाप भीरू थे। उनकी स्त्रीका नाम जयसेना था वह रूपवान तो थीं, परन्तु महा मिथ्यातिनी, सदा काम अग्निसे सन्तप्त रहती थी और जैन-धर्मसे तो सदा विपरीत भाव रखती थी।

एक दिन ज्ञानभूषण मुनिराज ईर्यापथ शोधते हुए अलङ्कापुरीमें विहार करते हुए निकले। राजा जयसेनने उन्हें तिष्ठ तिष्ठ कहके पड़गाहा और नवधा भक्ति पूर्वक आहार दिये, परन्तु उनकी कुटिल नारी जयसेनाको राजाकी यह कृति न रुची।

दोहा।

रानी अपने चित्तमें, निन्दौ मुनिवर भेख।
कौन रूप इनने धरो, अम्बर हीन विशेख॥
देह मलिन निर्धन महा, मल आभूषण अङ्ग।
देखत लगै डरावनौ, दर्शन याके भंग॥

इत्यादि अनेक प्रकारसे अपने मनमें उस नीचनीने उन महात्माजीकी घोर निन्दा की। हां! राजाके डरसे वह मुखसे यद्यपि बहु मिष्ट भाषण करती थी, परन्तु अन्तरंगकी मलिनतासे उसने नाना कर्मोंका बन्ध किया। तीव्र पापका फल भी कभी कभी शीघ्र उदय हो जाता है सो रानी जयसेना कुष्ट व्याधिसे व्यथित हो गई। शरीर तो उसका इतना दुर्गंधित हो गया था कि कोई पास भी नहीं बैठता था। राजाने उसको ऐसी दुर्दशा देखकर कहा—

राजा— चौपाई।

मुनि ढिग जाय चरन तुम गहो। अपनो दुःख दीन ह्वै कहो॥
वे करुणा-निधि हैं मुनिराज। करि हैं तेरो तुरत इलाज॥

रानी भी मनमें समझ गई कि यह मुनि निन्दा का फल है, वह पालकीमें बैठकर श्री गुरुके पास गई और अपनी सब दशा सुनाई।

रानी— चौपाई।

मोकों क्षमा करो मुनिराज। शरण गहेकी राखहु लाज॥
तुम दयालु करुणा निधिसार। भानु भांति तपतेज अपार॥१॥

साधु— चौपाई।

देव शास्त्र गुरु भक्ति करेव। चव विधि दान सुपात्रहिं देव॥
मुनि निन्दा नहिं कीजे भूल। यह सुख वेलि कुल्हाड़ी मूल॥
तुम मेरो इक कहो करेव। अद्भुत मंत्र कपट तजि लेव॥
कुम कुम केसर अरु घनसार। तासों लिखियो थार मंझार॥
सो तुम थार लियो जल धोय। उत्तम जल असनापन* होय॥

मुनिके वचन सुनकर जयसेना बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने श्री भक्तामरजीका २६ वां काव्य रुचि पूर्वक सीख लिया और घरपर पहुंच कर वैसी ही क्रिया की जिससे सब देह निरोग हो गई।

---

* सब शरीर पर स्नानवत लेप करनेका अभिप्राय है।

धन्य है इस पवित्र जैन-धर्मको कि, जिसके प्रसादसे रानी जयसेनाकी दिव्य देह हो गई।

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम्।
उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्॥३०॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र! कुन्दके पुष्पोंके समान उज्ज्वल और ढुरते हुए चमरोंसे शोभित आपका शरीर ऐसा शोभायमान होता है जैसा झरनोंकी वहती हुई चन्द्रवत स्वच्छ जल धाराओंसे सुवर्णमई सुमेरुका ऊंचा तट सुशोभित होता है। (यह तीसरे प्रतिहार्यका वर्णन है)

३० ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणाणं।

मंत्र—ॐ नमो अट्ठे मट्ठे क्षुद्रविघट्ठे क्षुद्रान् स्तंभय स्तंभय रक्षां कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—ऋद्धि मंत्रकी आराधनासे और यंत्र पासमें रखनेसे शत्रु का स्तंभन होता है।

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त-
मुच्चैःस्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम्।

मूक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं
प्रख्यापयत्त्रिजतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

भावार्थ—हे प्रभु ! चन्द्रमाके समान रमणीय, ऊपर ठहरे हुए, तथा निवारण किया है सूर्यकी किरणोंका प्रताप जिन्होंने और मोतियोंके समूहकी रचनासे बढ़ी हुई है शोभा जिनकी, ऐसे आपके तीन क्षत्र, तीन जगतका परम ईश्वरपना प्रगट करते हुये शोभित होते हैं। (इस श्लोकमें चौथे प्रातिहार्यका वर्णन है)

३१. ऋद्धि—ॐ ह्रीं नमो घोर गुण परक्कमाणं।

मंत्र—ॐ उवसग्गहरं पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं विसहर विसणिर्णासिणं मंगल कल्लाण आवासं ॐ ह्रीं नमः स्वाहा।

फल—इस मन्त्रको आराधनासे राज मान्यता होती है।

गोपाल ग्वालकी कथा।

वच्छ देशमें श्रीपुर नामका नगर था वहाँ राजा रिपुपाल रहते थे उनके चार रानियां थीं जो गृहस्थ-धर्ममें बड़ी सावधान थीं।

चौपाई।

रानी चार तासुकी सती। एक एकतें बहु गुनवती॥
अपने पतिकी आज्ञा करैं। शील माल आभूषण धरैं॥१॥
पूजा दान विषैं अति चाव। गुरुकी सेवा हिरदैं भाव॥
व्रत विधानमें ते लवलीन। श्रवण पुरान सुनत मनमीन॥२॥

उनके यहां एक ग्वाला रहता था जो उनके गाय, भैंस आदिकी टहल किया करता था। एक दिन वह ग्वाला जंगलमें गया और परम वीतरागी मुनि महाराजके दर्शन हुए। ग्वालाने महात्माजीकी बड़े भक्ति भावसे वैयावृत्ति की और कहने लगा।

ग्वाला— चौपाई।

मोकों विधिना बहु दुख दयो। कारण कौन दरिद्री भयो॥
सो मुनिवर कहिये समझाय। मेरे मनको संशय जाय॥१॥

मुनि— चौपाई

सुनरे ग्वाल परम अज्ञान। तैं पूरव मुनि दियो न दान॥
विना दिया* पावै नहिं कोय। घरमें वस्तु धरी जो होय॥१॥

ग्वाला—

ताको है कछु आज उपाय। कै धौं जीवन यौंही जाय।
सो सब प्रगट बताओ हाल। तुम हो मुनिवर दीन दयाल॥१॥

मुनि—

मिथ्या मति पावै नहिं कोय। ताको देहु जो श्रावक होय॥

ग्वाला—

पहिलें मुहि अपनो कर लेव। ता पीछे मुनिवर कछु देव॥

---

* दिया देनेको भी कहते हैं और चिरागले भी कहते हैं।

मुनि— दोहा ।

प्रथमहि सुनो गुपालजी. तुम श्रावक व्रत लेव ।
अष्ट मूल गुण धारिकें, निशि भोजन न करेव ॥

ग्वाला— दोहा ।

हे मुनिवर ! गुरु देवजी. मैं नहिं जानत मूल ।
कृपया अब समझाइये, विगत विगत कर तूल ॥

मुनि— श्लोक ।

आप्ते पंच नुति जीव, दया सलिल गालनं ।
त्रिमद्यादि निशाहार. दुम्बराणां च वर्जनं ॥

अर्थ—पंच परमेष्ठी पर श्रद्धा, जीव दया, जल गालन, मद्य, मांस, मधु, रात्रि भोजन और उदम्बर फलों (बर पीपर ऊमर कठूमर और पाकर) का त्याग करना श्रावकके मूल गुण हैं ।

सारांश यह कि उन कृपालु मुनिराजने सब श्रावककी क्रिया उसे समझा दी और श्रीभक्ता-मरजीके २९ और ३० वें काव्य यथा विधि समझा दिये और कहा—

मुनि— चौपाई ।

जाहु बच्छ यह जपौ तुरन्त । शुद्धासन प्रासुक एकन्त ॥
रक्त वस्त्र माला रुद्राक्ष । दीजे अधिक अठोत्तर लाख* ॥

---

* १०००० ८ ।

मौन सहित नाशा दृग ध्यान । मन वचकाय त्रिविधि परवान ॥
थिरचित राखि विसरि मतजाय । बीसविसे* पढ़ियो चितलाय ।२।

ग्वालाने मुनि महाराजको नमस्कार करके चल दिया और उनकी बताई हुई रीति अनुसार आराधना आरम्भ कर दी जिसके प्रभावसे जिन देवाने प्रगट होकर कहा ।

देवी— चौपाई ।

कहौ गुपाल सो कारन कौन । जा कारन बैठे धरि मौन ॥
जो चाहो सो मोतें लेहु । अब तुम सुख सों राज करेहु ॥१॥

गोपाल—

हे माता कहु जानत नांह । जो तुम पूछत हो हम पांह ॥
जो जानों इतनों जस लेहु । दारिद मेरो नाश करेहु ॥१॥

देवी—

इसी देश हरी पुर गांव । तहं हरि वर्ष नृपति कौ ठांव ।
वाकी मीच† निकट भई आय । वाकौ राज लेहु तुम जाय ॥१॥

फिर क्या था गोपाल ग्वाल वहीं पहुंचे तो सचमुच हरीपुर नरेशकी मृत्यु हो गई थी और मंत्रियोंने मतवाला हाथी छोड़ रक्खा था कि, जो उसे वशमें करेगा उसीको राजा बनावेंगे। गोपाल ने पहुंचते ही उसका बकरेके समान कान पकड़

---

* नियमसे जरूर ही। † मृत्यु।

लिया और हरीपुरकी राजगद्दी पर बैठ कर राज्य सुख भोगने लगा।

गम्भीरताररवपूरितदिग्विभाग-
त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः।
सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी।३२।

भावार्थ—हे जिनेश! गंभीर तथा ऊंचे शब्दोंसे दिशाओंको पूरित करने वाला, तीन लोकके लोगोंको शुभ समागमकी विभूति देनेमें चतुर और आपका यशगान करनेवाला दुन्दुभि, आप तीर्थंकर देवकी जय घोषणा प्रगट करता हुआ आकाशमें गमन करता है। (यह पांचवें प्रातिहार्य्यका वर्णन हुआ।

३२ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर दंभचारिणं।

मंत्र—ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः सर्व दोष निवारणं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—उक्त ऋद्धि मन्त्र द्वारा (कुआंरी कन्याके हाथसे कता हुआ) सूत मन्त्रित करके उसे गलेमें बांधनेसे और यन्त्र पास रखनेसे संग्रहणी आदि पेटकी सब पीड़ाएं नष्ट होती हैं।
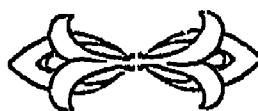
मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजात-
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा ।
गन्धोदविन्दुशुभमन्दमरुत्प्रपाता
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ।३३।

भावार्थ—हे जिनराज ! गंधोदकको बूंदोंसे मांगलिक मन्द मन्द पवन सहित, ऊर्ध्व मुखी* और देवोपुनीत मंदार, सुन्दर नमेरु, सुपारिजात, सन्तानक आदि कल्प वृक्षोंके फूलोंकी वर्षा आकाशसे बरसती है सो मानो आपके वचनोंकी वृष्टि ही हो रही है। (यह छठा प्रातिहार्य्य है)

३३ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहि पत्ताणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं ध्यानसिद्धिपरमयोगीश्वराय नमो नमः स्वाहा ।

विधि – उक्त ऋद्धि मन्त्रसे (कुआंरी कन्या द्वारा कताये हुए) सूतको मन्त्रित करके उसका गंडा बांधनेसे और झाड़ा देनेसे तथा पासमें यन्त्र रखनेसे एकांतरा, तिजारी, ताप आदि सब रोग नष्ट होते हैं। धूप गुग्गलकी घृत मिली होनी चाहिये ।

बाई मदनसुन्दरी की कथा ।

उज्जैन नगरमें राजा रतनशेखर राज्य करते

---

* भगवानके समवशरणमें फूल बरसते हैं उनके मुंह ऊपरको और डंठल नीचेको रहते हैं।

थे। वे बड़ी ही नीतिवान और प्रजा पालक थे। उनकी पटरानीका नाम मदनसुन्दरी था, परन्तु पूर्व जन्ममें उसने जैन-शास्त्रोंका अनादर किया था इससे उसने अत्यन्त कुरूप देह पाई थी। सिर पर खड़े भूरे बाल, छोटासा ललाट, चपटी बहती हुई नाक, ओठोंसे बाहर निकले हुए दांत, मोटी कमर, पतली जंघा, बिम्बाई, फटी एड़ियां, हाथी ऐसे कड़े सर्वाङ्गरोम, फूली हुई गर्दन और पीव बहते कान होनेसे वह कहने मात्रकी मदनसुन्दरी थी, इतनेपर भी उसे गलित कुष्ट था और खांसी तथा दमा उसको दम लिये डालते थे, इससे कोई पास भी नहीं खड़ा होता था। राजाने नाना चेष्टाएं कीं पर सफलता नहीं हुई।

एक दिन राजा रतनशेखर बड़ी ही चिन्तामें बैठे थे कि इतनेमें श्रीदत्त नामके एक जैनी श्रावक ने आकर राजासे पूछा।

श्रीदत्त—हे राजन! आज चिन्तामें क्यों मग्न हैं?

राजा—भाई! मुझे अपना दुख कहते लज्जा आती है, "अपनी जांघ उघारिये, आपहिं आवै लाज।"

श्रीदत्त—आप स्पष्ट कहें, मैं श्रीमान्‌की चिन्ता मिटानेका प्रयत्न सोचूंगा।

राजा रतनशेखरने रानी मदनसुन्दरीकी सब दशा सुनाई, तब श्रीदत्तने कहा कि आप श्रीमती रानी मदनसुन्दरीको स्वामी धर्मसेन मुनिके पास ले जाइये वे मनीश्वर यह व्यथा मेटनेको समर्थ हैं।

राजा—अच्छा, तो पालकी भेज कर उन्हें बुलवाइये।

श्रीदत्त—वे वीतरागी ऋषिराज हाथी, घोड़ों की कुछ अपेक्षा नहीं करते और न उनको कुछ राजदरबारकी परवाह है। आपकी अभिलाषा हो तो उन्होंकी शरणमें जाइये।

दोहा।

तब राजा रानी सहित, चलौ मुनीसुर पास।
नांगे पग बनमें गये, जहँ मुनि परम उदास ॥१॥
बैठे देखो छीन तन, आतम सौं लवलीन।
दै प्रदच्छना रायने, नमस्कार जुग कीन ॥२॥
धर्मवृद्धि मुनिवर दई, समाधान कहि राय।
तब कीन्ही स्तुति घनी, राजा सीस नवाय ॥३॥

राजा— अडिल्ल छन्द।

तुम स्वामी निरग्रन्थ, सु कहा चढ़ाइये।

हेम रतन गज चीर, सुढिग नहिं लाइये ॥
तुम चरनन कौ सरन, गह्यौ मैं आयकें।
और कहां मैं जाऊं, तुम्हें प्रभु पायकें ॥१॥
लेहौं जिनवर धर्म. जु मुझ संकट हरो।
मुनि अपने परसाद, तिया नीकी करो ॥
तुम हो दीन दयाल, अधिक कह भाखिये।
शरण गहेकी लाज, चरण मोहि राखिये ॥२॥

मुनिराज—अच्छा मैं कल सवेरे इसका उत्तर दूंगा।

महात्माजीने राजासे कह तो दिया, परन्तु उन्होंने उलटी चिन्ता खड़ी कर ली उन्हें यह शल्य चुभने लगी थी जिससे जप, तप सब भूल गये थे, उनका ध्यान था कि यदि रानीका रोग नहीं जावेगा तो जैन-धर्मकी हँसी होवेगी। इसलिये वे सन्यास लेकर शरीर छोड़नेकी भावना भा रहे थे कि इतनेमें पद्मावती देवीने प्रगट होकर मुनिराजको नमस्कार किया, और कहा कि आप चिन्ता न करें। श्रीभक्तामरजी ३२ और ३३ वें जुगल काव्य रानीको सिखा दीजिये धर्मके प्रसाद से सफलता होगी। सवेरे रानी मदनसुन्दरी मुनिराजकी सेवामें गई तो महात्माजीने श्रावगके व्रत-

सहित युगल काव्य पढ़ा दिये। रानीने घर जाकर उनका विधिपूर्वक जाप किया जिससे उसका जैसा नाम था वैसा ही रूप हो गया और समस्त रोग नष्ट हो गया।

शुम्भत्प्रभावलय भूरिविभा विभोस्ते
लोकत्रयद्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तर भूरिसंख्या
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम्

भावार्थ—हे भगवन्त ! देदीप्यमान सघन और अनेक सूर्योंके तुल्य आपके प्रभा मण्डलकी अतिशय प्रभा तीनों लोकके प्रकाशमान पदार्थोंकी कांतिको लज्जित करतो हुई चन्द्रमाके समान सौम्य होने पर भी रात्रिको दूर करती है। अभिप्राय यह है कि प्रभा मण्डलकी प्रभा यद्यपि कोट सूर्यके समान तेज वाली है, परन्तु आताप करने वाली नहीं है वह चन्द्रमाके समान शीतल है और रात्रिका अन्धकार नहीं होने देती। यह विरोधाभास अलंकार है। (यह सातवां प्रातिहार्य है)

३४ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्ह णमो खिल्लोसहिपत्ताणं।

मंत्र—ॐ नमो ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं ह्रौं पद्मावत्यै नमो नमः स्वाहा।

विधि–कुसुमके रंगसे रंगे हुए सूतको १०८ वार ऋद्धि मन्त्र द्वारा मन्त्रित करके उसे गुग्गलकी धूप देकर बांधनेसे और यन्त्र

पासमें रखने गर्भका स्तंभन होता है असमयमें गर्भका पतन नहीं होता।

स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः
सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व-
भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥३५॥

भावार्थ—हे प्रभु ! स्वर्ग ओर मोक्ष मार्ग दर्शानेमें इष्ट, उत्कृष्ट धर्मके तत्व कथन करनेमें एक मात्र श्रेष्ठ निर्मल अर्थ और समस्त भाषाओं रूप परिणमन करनेवाली आपकी दिव्य ध्वनि होती है। (यह आठवां प्रातिहार्य है)

३५ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताणं।

मंत्र—ॐ नमो जय विजया पराजित महालक्ष्मी अमृतवर्षिणी अमृतं स्राविणी अमृतं भव भव वषट् सुधाय स्वाहा।

विधि—उक्त रिद्धि मन्त्रकी आराधनासे यन्त्र पास रखनेसे दुर्भिक्ष चोरी, मरी, मिरगी, राजभय आदि सब नष्ट होते हैं। इस मन्त्रकी आराधना स्थानकमें करनी चाहिये और यन्त्रकी पूजा करनी चाहिये।

राजा भीमसेनकी कथा।

जगत प्रसिद्ध बानारसी नगरीमें राजा भीमसेन राज्य करते थे, वे बड़े ही न्यायशील थे।

चौपाई ।

भीमसेन राजा राजंत । भीरु सेन सो जो बलवन्त ।।
रूप विषै रतिपति अवतार । भेद विज्ञान कला गुन सार ।।
अपने धर्म विषैं लवलीन । न्याय नीतिमें परम प्रवीन ।।
दं. बंध छेदन अरु मार । जाके राज्य नहीं संहार ।।

पूर्व असाताके विपाकसे महाराजा भीमसेन एक भयंकर रोगसे पीड़ित हो गये थे, जिससे उनका शरीर नितान्त दुर्बल हो गया था, कांति उड़ गयी थी. अस्थिचर्म सूख गये थे और देखनेमें बहुत डरावने दिखने लगे थे. और भूखका पता नहीं था । नाना प्रयत्न किये पर सब व्यर्थ हुए । राजाकी यह दशा देखकर एक दिन उनकी रानी अधीर हो पड़ीं उन्हें साहस न रहा और व्याकुल होकर रोने लगीं । मन्त्री लोग दौड़े आये और उन्हें धीरज बंधाया ।

मन्त्री— सोरठा ।

रानी सौं कहिं आय, काहे कौं दुख करत है ।
पूरब करम उपाय, सो तो भुगते ही बनै ।।
जतन करेंगे लाख, मंत्र जंत्र वा औषधी ।
तू मन धीरज राख, राजा नीके होयंगे ।।

एक दिन बुद्धिकीर्ति मुनि महाराज विहार

करते हुए बनारस नगरीमें गये, राजा उन्हें देख कर मुनिके चरणों लेट गये और अपनी कमनसी-बीका सब हाल कह सुनाया और निवेदन किया कि हे दीनदयाल ! ऐसी कृपा कीजिये जिससे यह व्यथा दूर होवे।

मुनि— चौपाई।

कितक बात यह भूपति आय। कोटिन व्याधि दूर हो जाय॥
जुगल मन्त्र हमसो तुम लेहु। छिनमें व्यथा प्रथक कर देहु॥१॥

मुनिराज तो विधि पूर्वक ३४ और ३५ वां काव्य सिखा कर विहार कर गये, पर राजाने तीन दिन बड़ी कठिन तपस्या की तब चक्रेसुरी देवीने प्रगट होकर कहा—

देवी— चौपाई।

मांग मांग जो इच्छा होय। छिनमें पूर्ण करूंगी तोय॥

राजा—

जो माता तुम होहु सहाय। तो मो व्यथा दूर हो जाय॥

देवी—

श्रीजिनके चैत्यालय जाय। आदिनाथ असनान कराय॥
वह गंधोदक ल्यावहु अङ्ग। काम रूप ह्वै है सरवंग॥१॥

देवी आशीर्वाद देकर निज स्थानको गई और

राजाने वैसा ही किया जैसा देवी कह गई थी। फिर क्या था?

चौपाई।

ले गंधोदक लायो अङ्ग। मदन रूप पायो सरवंग ॥
लागत मात्र और छवि छई। कंचन वदन देह सब भई ॥१॥
तब दौरे मुनिवर पै गये। कर नमोस्तु ढिग ठाढ़े भये ॥
राजा मन उपजो वैराग। यह गुरु पाये पूरन भाग ॥२॥
द्वादश भांति भावना भाय। लीनी दीक्षा सीस नवाय ॥
अन्तकाल लीन्हों सन्यास। तजी देह कीन्हों सुरवास ॥३॥

दोहा।

जैन धरम पाऊं सदा, दया प्रास है जाहि।
तातैं पावै परम पद, अन्य धरममें नाहि ॥१॥

उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ती
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाःपरिकल्पयन्ति ॥३६॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र! फूले हुये सुवर्णके नवीन कमल समूहके सदृश कान्तिवान और चहुं ओर फैलती हुई नखोंकी किरणोंके समूहसे सुन्दर ऐसे चरण आप जहां रखते हैं वहां देवतागण कमलोंकी रचना करते हैं।

३६ ऋद्धि ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहि पत्ताणं ।

मंत्र - ॐ ह्रीं कलिकुण्डदण्डस्वामिन् आगच्छ आगच्छ आत्म-मंत्रान् आकर्षय आकर्षय आत्ममंत्रान् रक्ष रक्ष परमंत्रान् छिन्द छिन्द मम समीहितं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि - ऋद्धि मंत्रकी आराधनासे और यन्त्र पास रखनेसे सम्पत्ति लाभ होता है। लाल पुष्प द्वारा १२००० जाप करना चाहिये और यंत्रकी पूजन भी करते रहना चाहिये ।

सुरसुन्दरी की कथा ।

पटना नगरमें राजा धारिवाहन राज करते थे उनकी रानीका नाम क्षत्रीसेना था उनके सात पुत्र थे और एक कन्या थी, कन्याका नाम सुरसुन्दरी था जैसा उसका नाम था वैसी ही वह रूपवान और मनोहर भी थी, परन्तु जिन-धर्ममें अनुराग न होनेसे उसे बिना सुगंधिका ही फूल कहना चाहिये । उसे अपने स्वरूपका बड़ा गुमान था, अपने रूपके गर्वके मारे वह औरोंको तिनकाके समान तुच्छ समझती थी । राजा रानीको एक ही लड़की होनेसे उन्होंने उसे लाड़ली भी बना लिया था इससे वह उनके भी सिर चढ़ गई थी

और उन दोनोंकी कुछ परवाह भी नहीं करती थी। ठीक है—

चौपाई।

कन्या जिनहु चढ़ाई मूढ़। तिनने पकरी गजकी सूंढ़॥
जिन बेटीको सिख बुध दई। तिनकी कीरति घर घर भई॥

यद्यपि सुरसुन्दरी बड़ी ढीठ थी फिर भी माता पिताको बहुत प्यारी थी। एक दिन वह पालकीमें चढ़कर जिनमन्दिरको गई और बहुतसी सहेलियोंको साथ ले गई। उस मूर्खाने जिनराज की दिगम्बर प्रतिमाकी बड़ी ही निन्दा की। वह कहने लगी कि इनके न तो आभूषण हैं न स्त्री ही है और तो क्या कपड़े तक नहीं हैं, जब इन की खुद ही की यह दशा है तो ये दूसरोंको क्या दे सकते हैं? सुखकी आशासे इन्हें पूजना मानों घृतके हेतु पानीका विलोवना है। सुरसुन्दरीने यह भी कहा कि देवताओंमें कृष्णजीको ही धन्य कहना चाहिये, जो दिव्य वस्त्र आभूषणोंसे सजे हुए हैं गोपियों और ग्वालबाल मण्डलीके साथ क्रीड़ा करते हैं और सोलह हजार रमणियोंके साथ मौज करते हैं।

जिन मन्दिरजीसे निकल कर वह सुरसुन्दरी

बाहिर आई तो थोड़ी ही दूरपर एक परम दिगम्बर बीतरागी मुनिराजको देखा और उन्हें भी निर्लज्ज, म्लेक्ष, दरिद्री आदि अपशब्द कह डाले। वह पापिनी रूपके अभिमानमें ऐसी अन्ध हो गई कि अपने मुंहमेंसे पानका उगाल उन निस्प्रेह महात्मा-जीके ऊपर उगल दिया।

बहुत पाप कर्मोंका विपाक तत्काल ही रस दे देता है और पूर्वोपार्जित शुभ कर्म अशुभ रूप परणम जाते हैं. सो सुरसुन्दरीको भी ऐसा ही हुआ देव और गुरुकी निन्दा करते ही तत्काल उसका सर्व शरीर कांति प्रतापहीन अत्यन्त कुरूप हो गया। जब वह घर आई तो सखियोंने जिनराज और मुनि-राजकी निन्दाका सब वृतान्त राजाको सुनाया। महाराजा धारिबाहन पुत्रीकी यह करतूत और दशा देखकर बहुत चिन्तित हुए अन्तमें उन्होंने नगरकी श्रावक मण्डलीकी सम्मतिसे जिनराजकी महान पूजा की और उन्हीं मुनिराजकी शरणमें गये। नमस्कार करनेपर मुनिराजने धर्म वृद्धि दी और कहा, राजन्! कुशलसे तो हो?

राजा—गुरुदेवके चरण प्रसादसे सर्व मंगल होगा।

मुनिराज—ऐसी बात क्यों कही ? खुलासा करके सुनाओ।

राजा—मेरी सुरसुन्दरी नामकी कन्याने जिनदेव और जिनगुरुकी निन्दा करके अपने पांव पर अपने हाथसे कुल्हाड़ी पटक ली है वह नितान्त रोगी और कुरूपा हो गई है, कोई ऐसा प्रयत्न कीजिये जिससे यह असाता दूर हो।

उन महात्माजीने एक घड़ा पानी मंगवाया और 'उन्निद्र' आदि छत्तीसवां काव्य पढ़के कहा कि, इस पानीसे बाईको स्नान कराओ।

सुरसुन्दरीने अपनी कृतिपर बहुत पश्चात्ताप किया और मन्त्रित जलसे स्नान किया।

जिसके प्रसादसे उसका पहिलेसे भी सुन्दर उर्वशी जैसा रूप हो गया उसकी जैनमत पर पूरी श्रद्धा हो गई, फिर उसने अपना विवाह नहीं किया। उन्हीं मुनिराजके पास अर्जिकाके व्रत लिये और आयुके अन्तमें समाधि पूर्वक शरीर छोड़कर वह देवसुन्दरी देवलोकको गई।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥३७॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र ! धर्मोपदेशके समय समवसरणमें पूर्वोक्त प्रकारसे जैसो विभूति आपको हुई वैसी अन्य हरिहरादि देवोंकी नहीं हुई । सो ठीक ही है जैसी अंधकार नाशक प्रभा सूर्यकी होती है, वैसी प्रकाशमान तारा गणोंकी कहां हो सकती है ?

३७ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं ।

मंत्र—ॐ नमो भगवते अप्रतिचक्रे ऐं क्लीं ब्लूं ॐ ह्रीं मनो वांछित सिद्धयै नमो नमः अप्रतिचक्रे ह्रीं ठः ठः स्वाहा ।

विधि—ऋद्धि मन्त्र द्वारा २१ बार पानी मन्त्र कर मुंहपर छींटा देनेसे और यन्त्र पास रखनेसे दुर्जनवश होता है, उसकी जीभका स्तंभन होता है (बोल नहीं सकता)

सेठ जिनदासकी कथा ।
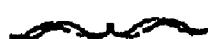
भगवान पद्म प्रभुके गर्भ जन्म कल्याण होने से कोसाम्बी नगरी जैन जनतामें बहुत विख्यात है वहां पर जिनदास नामके एक सेठ रहते थे ।

एक बार उन्हें व्यापारमें बड़ा घाटा लगा और सब सम्पत्ति खो बैठे। बेचारे बड़े ही व्याकुल हुए और खूब रोये। उनकी ऐसी विकल दशा सुन कर वहांके एक दूसरे सेठ सुदत्तजीने सेठ जिन-दासजीको अपने घरपर बुलाया और बहुत धीरज बंधाया। उन्होंने यह भी कहा कि, आपने कुछ अनाचारमें तो धन खोया नहीं है, जुआ और वेश्याबाजी नहीं की है व्यापार किया है। यदि टोटा लग गया है तो क्या चिन्ता है फिर कमा-ओगे। इस प्रकार सम्बोधन करके उन्हें खासी पूंजीकी मदद दी।

सेठ जिनदासजीने पुनः उद्योग किया परन्तु भाग्यने उनको पुनः टक्कर दी और वे फिरसे तङ्ग-दस्त हो गये, विरानी पूंजी भी खो बैठे। निदान वे एक दिन स्वामी अभयचन्द मुनिराजके पास गये और भक्ति पूर्वक नमस्कार करके खड़े हो गये। मुनिराजने धर्म वृद्धि दी, कुशल-क्षेम पूछ कर बैठनेको कहा और बहुतसा धर्मोपदेश दिया।

सेठ जिनदासने अवसर पाकर अपने मनकी व्यथा सुनाई और व्यापार सम्बन्धी सब वृत्तान्त सुनाया। उसे सुनकर मुनि महाराजने 'इत्थं यथा'

आदि ३७वां काव्य उन्हें सिखा दिया और सिद्ध करनेकी सम्पूर्ण रीति बता दी।

सेठ जिनदासने मन्त्रकी बिधि पूर्वक साधना की और १००८ बार जाप किया। आधी रात नहीं होने पाई थी कि वहां की बनदेवीने प्रगट हो कर एक अमूल्य रत्न सेठजीके हाथमें रख दिया और कहा—

देवी—हे भव्य जिनदास! तूने मुझे क्यों स्मरण किया है? तेरे मनमें जो इच्छा हो सो मांग।

जिनदास—हे माता! मैं महा दरिद्री हूं मुझे इस संकटसे बचाओ।

देवीने जिनदासजीको एक अंगूठी देकर कहा कि, इस अंगूठीके प्रसादसे तुम्हारी मनोकामनाएं पूरी होंगी। देवी तो इतना कहके चली गई पर जिनदासजी मुनिराजके पास वह रत्न और मुद्रिका लेकर गये और रात्रिका सब वृत्तान्त कह सुनाया।

एक दिन सेठ जिनदासजी परदेशको जा रहे थे कि रास्तेमें उन्हें बहुतसे चोर मिले जो राजा-का भण्डार चुरा लाये थे और बहुतसे हीरा जवा-

हिरातोंकी गठरी बांधे हुए थे। परस्परकी कुशल के पश्चात चोरोंने सेठजीसे कहा कि हमारे पास जो रतन हैं वे आप खरीद लें और नगदी रुपया या सोना चांदी दे दें। सेठजीने समझ लिया कि यह माल निस्सन्देह चोरीका है, निदान उन्होंने चोरोंको रतन मुद्रिका दिखाई और खूब फटकार लगाई। नतीजा यह हुआ कि चोर भाग गये और सारी सम्पदा छोड़ गये। सत्य वक्ता सेठ जिनदासजी यद्यपि दरिद्रताके मारे हुए थे, परन्तु उन्होंने सत्य नहीं छोड़ा वे जानते थे कि—

दोहा।

सत मत छोड़ो सूरमा, सत छोड़े पत जाय।
सतकी बांदी लक्ष्मी, मिलै घनेरी आय॥

बहुत कुछ सोच विचार कर वे कोसाम्बी नरेश धरमपालजीके दरबारमें संपूर्ण दौलत लेकर गये और उन्हें सौंपकर सब समाचार सुनाया। राजाने अपना सब माल पहिचान लिया और सेठ जिनदासजीकी ईमानदारीसे प्रसन्न होकर सर्व सम्पदा उन्हें सौंपकर बड़ी प्रशंसा की।

देखो! श्रीभक्तामरके काव्यके प्रभावसे सेठ जिनदासजी विपुल सम्पत्तिके अधिकारी हो गये।

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-
मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ।३८।

भावार्थ—हे जिनराज ! झरते हुए मदसे जिसके गंडस्थल मलीन तथा चञ्चल हो रहे हैं और उनपर उन्मत्त होकर भ्रमण करते हुये भौंरे अपने शब्दोंसे जिसका क्रोध बढ़ा रहे हैं, ऐसे मतवारे और ऐरावतके समान हाथीको अपने ऊपर झपटता हुआ देखकर आपके भक्तोंको भय नहीं होता है ।

३८ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणचलीणं ।

मंत्र—ॐ नमो भगवते महानागकुलोच्चाटिनी कालदष्टमृतको-त्थापिनी परमन्त्र प्रणाशिनी देवि देवते ह्रीं नमो नमः स्वाहा ।

फल—ऋद्धि मन्त्र जपने और यन्त्र पासमें रखनेसे धन लाभ होता है ।

सेठ सोमदत्तजीकी कथा ।

बीरपुर नगरमें राजा सोमदत्त राज्य करते थे । उनके सुखानन्द नामका मात्र एक ही पुत्र था सो भी दूराचारो और जुएबाज था, उसकी कुसंगति, असदाचारकी परिणति देखकर वहांके

समीपी महाराजाने सोमदत्तकी सारी सम्पत्ति लुटवाली और उन्हें गद्दीसे उतार दिया। यहांतक कि उन्हें भोजन तकके लिये मुंहताज कर दिया।

प्रथम तो पुत्र कुपुत्र, दूसरे घरमें दारिद्र होनेसे बड़े ही आकुलित रहते थे। बेचारे सोमदत्तजी एक दिन स्वामी वर्धमान मुनिकी बन्दनाको गये और अपनी सब दुर्दशा निवेदन की। उनने यह भी कहा कि ऐसी कृपा कीजिये जिससे मेरी दरिद्रता दूर हो। उन कृपालु मुनिराजने इन्हें श्रीभक्तामरजीका ३८ वां काव्य बिधि पूर्वक सिखा दिया। उसकी उन्होंने भले प्रकार आराधना की और मन्त्र सिद्ध करके धनकी चिन्तामें वे हस्तनापुर गये।

वहांके राजा बिजयसेनके यहां एक बड़ा मत्त हाथी था जो बहुत ही प्रचण्ड और उद्दण्ड था। एक दिन वह महावतोंकी असावधानीसे छूट पड़ा और शहरमें प्रवेश करके घोर उपसर्ग करने लगा। सैकड़ों नर नारियोंको उसने चीर डाला, हजारों दूकानें कुचल डालीं, बहुते वृक्ष उखाड़ कर फेंक दिये और लोगोंका घरसे बाहर निकलना असम्भव कर दिया। राजा विजयसेन और उनकी

सेनाने नाना प्रकारकी चेष्टाएं कीं, परन्तु वे सब व्यर्थ हुईं। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि, जो कोई हाथीको वशमें करेगा उसे अपनी प्रिये पुत्री परणाऊंगा और चौथाई राज्यका स्वामी बनाऊंगा। यह हाल जब सोमदत्तने सुना तो उन्होंने 'श्च्योतन्मदा' आदि ३८ वां काव्य पढ़के हाथीका कान पकड़ लिया और उसपर सवार होकर दरबारमें पहुंचे। राजा बहुत प्रसन्न हुए परन्तु इनका जाति कुल ज्ञात न होनेसे कन्या न देकर मनमाना धन देनेका निश्चय किया।

जब राजकुमारी मनोरमाकी दृष्टि सोमदत्त पर पड़ी तो मदनके जोरसे वह विह्वल हो गई और अचेत होकर भूमिपर गिर पड़ी। ज्यों त्यों कर राजा विजयसेन हाथीकी विपत्तिसे मुक्त हुए थे कि, यह दूसरी आफत आ खड़ी हुई, उन्होंने नाना उपचार किये, पर मूर्छा बढ़ती ही गई। राजाने मनादी करवा दी कि जो कोई मनुष्य इसे सचेत करेगा उसे यह पुत्री और आधा राज्य दे दूंगा। निदान सोमदत्तजी मनमें श्रीभक्तामर काव्यका स्मरण करके राजाके साथ राजकन्याके पास गये। वह उन्हें देखते ही सचेत हो गई

और बोली क्यों यह भीड़ जमा हुई है? मुझे स्नान कराओ, भूख लगी है।

यह चमत्कार देखकर मन्त्रियोंने सोमदत्तजी-का जाति कुल आदि सारा वृतान्त पूछा। तब उन्होंने सविस्तर हाल सुनाया, जिसे सुनकर राजा विजयसेनने अपनी प्रिय पुत्री मनोरमाका विवाह सोमदत्तजीके साथ कर दिया और अपना आधा राज्य उन्हें सौंप दिया। राजा सोमदत्तने मनो-रमा जैसी रानी पाकर बड़ा हर्ष मनाया अपने सब कुटुम्बको वीरपुरसे हस्तनापुरमें बुला लिया और राजा श्रेणिक और रानी चेलनाके समान राज्य करके ग्रहस्थ-धर्म पालन करने लगे।

देखो! राजा सोमदत्तको भक्तामरके काव्यके प्रभावसे कुवेर जैसी सम्पदा और इन्द्रानी जैसी मनोरमा रानी प्राप्त हुई।

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते॥३६॥

भावार्थ—हे प्रभु ! हाथियोंके मस्तक फोड़नेसे रक्तमें भींगे हुए मोती जिसने धरती पर बिखरा दिये हैं और पकड़नेके लिये जिसने चौकड़ी बांधी है ऐसा सिंह भी, आपके जुगल चरणों रूप पर्वतोंका आश्रय लेनेवाले पुरुषका कुछभी नहीं कर सकता है।

३९ ऋद्धि – ॐ ह्रीं णमो वचवलीणं।

मंत्र—ॐ नमो एषु वृत्तेषु वर्द्धमान तव भय हरं वृत्ति वर्णा येषु मंत्राः पुनः स्मर्तव्या अतोना परमन्त्रनिवेदनाय नमः स्वाहा।

फल—ऋद्धि मन्त्र जपने और यन्त्र पासमें रखनेसे सर्पका भय नहीं रहता।

सेठ देवराजजीकी कथा।

श्रीपुर नगरमें एक सेठजी रहते थे वे जवाहरातका व्यापार करते थे उनका नाम देवराज था। उन्होंने स्वामी वीरचन्द मुनिराजके पाससे श्री-भक्तामरका अच्छा अभ्यास किया था। देवराज जीको एक पुत्र भी था और वह पिताका बड़ा भक्त था, नाम उसका अमृतचन्द था। एक दिन सेठ देवराजने व्यापारके लिये रत्नदीपको जानेकी तैयारी की और प्रिय अमृतचन्द्रको पासमें बैठा-कर कहा कि, घरकी चौकसी रखना। तिसपर पुत्रने विनय की कि, मैं ही परदेशको चला

जाऊंगा आप घरमें धर्म-साधन कीजिये। विद्वान देवराजने प्रिय अमृतचन्द्रको नादान समझ कर विदेश नहीं जाने दिया आप स्वयम् रतनदीपको गये, साथमें कुछ वणिक मण्डली भी थी।

चलते चलते वे अकस्मात् रास्ता भूल गये और ऐसे भयानक जङ्गलमें पहुंचे जहां आदमीका पता नहीं था। हाथी, रीछ, बन्दर, सर्प, सिंह आदिसे वह जङ्गल भरपूर था। एक विकराल सिंह मानो भयानक काल ही था वह इनके सामने रास्ता रोक कर खड़ा हो गया। यह हाल देखकर साथके सब लोगोंके होश उड़ गये और बड़े घबड़ाये। तब धीरवीर देवराजने 'भिन्नेभकुम्भ' आदि ३६ वां काव्य स्मरण किया। जिसके प्रभावसे वह प्रचण्ड सिंह कुत्तेके समान पूंछ हिलाता हुआ इनपर भक्ति दर्शाने लगा, वह बहुतसे गज-मुक्ता* बटोर कर लाया और सेठ देवराजजीके सन्मुख रख दिये। सेठ देवराजने सिंहसे कहा कि तुम हिंसक जीव हो प्राणियोंका घात करते हो यह तुम्हारे लिये बड़ी निन्दा की बात है। इस प्रकार धर्मका उपदेश सुननेसे उसे जाति स्मरण† हो

* हाथीके मस्तकमेंसे निकलते हैं। † पूर्वभव याद।

गया और सम्यग्दर्शन प्रगट हो गया जिससे उसका चित्त बड़ा ही नम्र हो गया यहां तक कि उसने उस दिनसे फिर कभी हिंसा नहीं की।

सेठ देवराज और उनके साथियोंने रतनद्वीप में पहुंच कर वहां क्रय* विक्रय† करके घरका रास्ता लिया और सकुशल श्रीपुर पहुंचे। सिंहके समागमसे भी मृत्यु टल गई जान कर सबने बड़ी खुशी मनाई, जिनराजको महा पूजा भावपूर्वक की और धर्मकी खूब प्रभावना फैलायी। वे वीरचन्द्र स्वामीकी वन्दनाको गये और उन्हें सब समाचार सुनाया तब मुनि महाराजने कहा यह तो किंचित बात है श्रीभक्तामरजीके प्रभावसे कोटि कोटि विघ्न क्षण भरमें टल जाते हैं। पश्चात सेठ देवराजने सिंहके दिये हुए अच्छे अच्छे गजमुक्ता वहांके राजा श्रीपालकी सेवामें भेंट किये और सिंहके उद्रवका सब हाल सुनाया जिससे राजा और दरबारके लोगोंपर जैनधर्मका बड़ा प्रभाव पड़ा और सबने जैनधर्म अंगीकार किया।

---

* खरीदना। † बेचना।

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥

भावार्थ—हे प्रभु ! प्रलयकालकी पवनसे उत्तेजित हुई अग्निके सदृश तथा उड़ रहे हैं ऊपरको फुलिंग जिससे ऐसी जलती हुई उज्ज्वल और संपूर्ण संसारको नाश करलेकी मानो जिसकी इच्छा ही है ऐसी सन्मुख आती हुई दावाग्निको आपके नामका कीर्तन रूप जल शान्त करता है।

४० ऋद्धि – ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायवलीणं।

मन्त्र – ॐ ह्रां श्रीं ह्रां ह्रीं अग्नि उपशम कुरु कुरु स्वाहा।

विधि–ऋद्धि मन्त्र जपनेसे और यन्त्र पास रखनेसे अग्निका भय मिट जाता है।

सेठ लक्ष्मीधरजीकी कथा।

—∞∞○○∞∞—

पोदनपुर नगरमें लक्ष्मीधर नामके एक सेठ रहते थे जैसे वे नामके लक्ष्मीधर थे वैसे लक्ष्मीसे सम्पन्न भी थे। जैन-धर्म पर उनका दृढ़ विश्वास होनेसे जिनपूजा सुपात्र दान और शील संयममें सदा सावधान रहते थे। उन्होंने भक्तामरजीके

काव्य सकलसंजमी मुनिराजके पास विधि पूर्वक सीखे थे। उनके पुत्रका नाम गणधर था वह माता पिताका बड़ा आज्ञाकारी और सुशील था।

एक दिन सेठ लक्ष्मीधरजीने अपने प्रिय पुत्र गणधरको पासमें बैठा कर कहा कि न्याय पूर्वक उद्योग करके धन संचय करना ग्रहस्थोंका कर्तव्य है. क्योंकि संसारके निर्वाहका दारमदार धन ही पर निर्भर है इसलिये वाणिज्यके हेतु मैं सिंहल-दीपको जाता हूँ। पहिले तो प्रिय पुत्र गणधरने स्वयम् विदेश जानेकी पितासे प्रार्थना की, परन्तु पिताकी गहन अभिलाषा देख वह चुप हो गया।

सारांश यह कि उभय सम्मतिसे सेठ लक्ष्मी-धरजीने विदेश जानेकी तैयारी की और बहुत सी वणिक मण्डलीके साथ मालकी गाड़ियां घोड़े आदि भरवा कर सिंहलदीपको चल दिये। रास्ते में एक जगह डेरा डाले पड़े हुए थे और रसोई बना रहे थे कि अकस्मात उनके डेरेमें आग लग गई और चहुंओर घासके झोपड़े होनेसे अग्निने बड़ा भयङ्कर रूप धारण किया, लक्षावधि रुपयों-का माल बिलकुल जलकर सर्वनाश हो जानेमें किंचित सन्देह नहीं था। सब व्यापारी मण्डलीने

रुदन और हा ! हा ! कारका कोलाहल मचा रक्खा था।

पर सेठ लक्ष्मीधरने धीरज नहीं छोड़ा, उन्होंने बड़े गम्भीर भावसे स्नान करके स्वच्छ आसन पर कमलासन अङ्गीकार किया और 'कल्पान्तकाल' आदि ४० वें काव्यका १०८ वार जाप किया। जिसके प्रसादसे चक्रेश्वरी देवी प्रगट हुई और उसने एक छोटेसे गिलास भर पानी देकर कहा, कि इसे जहां तहां सींच दो, ऐसा कह देवी निज धामको चली गई। लोगोंने वैसा ही किया जिससे तुरन्त अग्नि शान्त हो गई। लोग यह कौतुक देख वहुत विस्मित हुए और सबने सेठ लक्ष्मीधरजीका बड़ा उपकार माना।

पश्चात वे सब मनोवांछित स्थानपर गये और अपने देशसे जो वस्तु ले गये थे उन्हें बेचकर और वहांकी वस्तुएं खरीद कर अपने घरको लौट आये। घरपर पहुंच कर सबने पूजा दान-पुन्यमें बहुत द्रव्य व्यय किया। एक दिन वे वहांके राजा माणिकचन्दजीकी सेवामें गये, उनसे प्रचण्ड अग्नि बढ़ने और उसके प्रशमन होनेका वृतान्त सुनाया। उसे सुनकर राजाने यह उत्तर दिया कि इसमें

आश्चर्यकी बात ही क्या है धर्मके प्रसादसे क्या नहीं होता? धर्मकी ऐसी ही महिमा है कि कठिन-से भी कठिन कार्य्य सुगमतासे सिद्ध हो जाते हैं।

रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनीलं
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशङ्क-
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥

भावार्थ-- जिस पुरुषके हृदयमें आपके नामकी नागदमनी जड़ी है वह पुरुष, लाल नेत्रवाले, मदोन्मत्त, कोयलके कंठ समान काले, क्रोधसे ऊपरको उठाया है फण जिसने और डसनेके लिये झपटते हुये सांपको अपने पैरोंसे कुचलता हुआ चला जाता है।

४१ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीरसवीणं।

मंत्र—ॐ नमो श्रां श्रीं श्रूं श्रः जलदेविकमलेपद्महृदनिवासिनी पद्मोपरिसंस्थिते सिद्धिं देहि मनोवांछितं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—ऋद्धि मन्त्र जपनेसे और यन्त्र पास रखनेसे राज दरबारमें सम्मान होता है और झाड़नेसे सर्पका विप उतरता है।

श्रीमती दृढ़व्रताकी कथा।

किसी समय नर्मदा नदीके किनारे सर्वदापुर नामका एक नगर था। वहां एक बड़े ही धनाढ्य

सेठ रहते थे, उनके समान उस नगरमें और कोई लक्ष्मीवान नहीं था, उनका नाम सेठ गुनचन्द्रजी था। उनके एक पुत्री थी जो रूप और लावण्यसे भरपूर थी। वह धर्ममें सदा सावधान रहती थी। उसने दिगम्बर मुनिराजके समीप श्रीभक्तामर-जीका अध्ययन रिद्धि मंत्र समेत किया था, उसका नाम दृढ़व्रता था।

जब दृढ़व्रता ब्याहके योग्य हुई तो खोजते खोजते सेठ गुणचन्द्रजीने बाई दृढ़व्रताका विवाह शिवपुर नगरके प्रसिद्ध सेठ कर्मचंन्दजीके पुत्र सुदत्तके साथ कर दिया। सेठ सुदत्तजी कोटी-ध्वज धनवान अवश्य थे, परन्तु धर्म, कर्मसे बिल-कुल शून्य थे। जब बाई दृढ़व्रता ससुरालको गई तो उन लोगोंकी अधार्मिक वृत्ति देखकर बड़ी चकित हुई। जब रात्रिके १० बज गये तब सासूने बाई दृढ़व्रतासे भोजनके लिये आग्रह किया। बाईने उसे अपनी सब चर्य्या समझाई कि, हे माता! रात्रि भोजन, अनछाना जलपान और कन्द-मूलका भक्षण ये बातें धर्मके बिलकुल विरुद्ध हैं और मैंने तो श्रीगुरुके समीप प्रतिज्ञा ले ली है कि मैं जीते जी रात्रि भोजन नहीं करूंगी।

सासूने तथा अन्य कुटुम्बी जनों वा उसके पतिने बहुतेरा समझाया, परन्तु वह सच्ची दृढ़व्रता अपने दृढ़व्रतसे जब लेशमात्र भी नहीं डिगी। इस पर वे लोग उस धर्म धुरन्धरासे खूब अप्रसन्न हो गये और उसके मार डालनेकी तजवीज करने लगे।

एक दिन सेठ सुदत्तजीने बाजीगरोंॐको कुछ दाम देकर एक बड़ा भयङ्कर सांप घड़ेमें रखकर बुलाया और अपने शयनागारमें मुंह बन्द करके चुपचाप रखवा दिया, रात्रिको जब इनका एकान्त मिलन हुआ तो सेठ सुदत्तने दृढ़ व्रतासे कहा कि उस घड़ेमें एक फूलोंका हार रक्खा है उसे उठा लाओ। भोली दृढ़व्रताको यह कपट ज्ञात नहीं था वह सीधी-साधी घड़ेके पास चली गई और हाथ डाल दिया। छली सुदत्त पलंगपर लेटा हुआ सोचता था कि अभी ही काम तमाम हुआ जाता है, दूसरी शादी कर लेंगे। परन्तु "वाहरे जैन-धर्म! और वाह री! सत्यसिंधु दृढ़व्रता" उसने घड़ेके अन्दरकी वस्तु हाथसे पकड़कर निकाल ली तो देखती क्या है, कि बहुत ही बढ़ियां फूलोंका गजरा है। वह उसे हाथमें लेती आई और बड़े

ॐ सपेरे।

उत्साहसे अपने प्राणनाथके गलेमें डाल दिया। वह पुष्पमाला पापी सुदत्तके क्रूर कपटके प्रभावसे पुनः भयंकर सर्प हो गया और सेठ सुदत्तको डंस लिया, जिससे वह मूर्छित हो गया। फिर क्या था सब कुटुम्बमें हा! हा! कार होने लगा। घर बाहरके सभी लोग घोषणा करने लगे कि, महा हत्यारी दृढ़व्रताने पति हत्या की है, और अन्य पुरुषसे दृढ़व्रताके आसक्त होनेसे ऐसा किया गया है।

अन्तमें यह न्याय वहांके राजा चन्द्रपालके पास गया और सांप भी पिटारीमें बन्द कराके दरबारमें भेजा गया। दृढ़व्रताका इजहार होनेपर उसने ऊपर कहा हुआ सब हाल सुनाया और यह भी कहा यदि सत्य न्याय नहीं होगा और मेरे ऊपर झूठा कलंक आवेगा तो श्रीमान्‌के ऊपर अपने प्राण विसर्जन करूंगी।

बहुत कुछ अनुसंधान करनेके अनन्तर सर्वदापुर नरेशने अपने नगरके बाजीगरोंको बुलाया और डांट लगाकर पूछा तो उस बाजीगरने जो सेठ सुदत्तजीको सांप दे गया था वह सच्चा हाल कह सुनाया। पश्चात राजाने दृढ़व्रताकी सासूको

फटकार लगाई तो उसने भी स्वीकार किया कि दृढ़व्रताको मार डालनेका बेशक निश्चय किया गया था। उसने यह भी कहा कि—

चौपाई।

छिनमें सांप छिनकमें माल। यह कौतक कैसो भूपाल॥

राजा चन्द्रपालने श्रीमती दृढ़व्रतासे पूछा कि, यह कौतुक किस मन्त्रके प्रसादसे होता है? तब उस पतिव्रताने 'रक्तेक्षणं' आदि मन्त्र पढ़ा तो पिटारेका सांप फिरसे पुष्पमाला हो गया। उसने थोड़ा पानी इसी मन्त्रसे मन्त्रित करके अपने पतिके ऊपर छिड़क दिया जिससे वह प्रसन्न होकर उठ बैठा। इससे सबपर जैन-धर्मका बड़ा प्रभाव पड़ा और राजा प्रजा सबने जैन-धर्म अंगीकार किया।

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं
त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति॥४२॥

भावार्थ—हे जिनराज ! आपके नामका कीर्तन करनेसे लड़ाईमें घोड़ों और हाथियोंके जिसमें भयानक शब्द हो रहे हैं ऐसी सेनाएं भी उदयको प्राप्त हुए सूर्यकी किरणोंसे नष्ट हुए अंधकारके समान शीघ्र ही नाशको प्राप्त होती हैं।

४२ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवाणं।

मंत्र—ॐ नमो नमि ऊण विषहर विषप्रणाशन रोग शोक दोष ग्रह कप्पदुमच्चजाई सुहनामगहणसकलसुहदे ॐ नमः स्वाहा।

फल—ऋद्धि मन्त्रकी आराधनासे और यन्त्र पास रखनेसे युद्धका भय नहीं होता।

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-
स्त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभन्ते॥४३॥

भावार्थ—हे देव ! बरछीकी नोकोंसे छेदे हुए हाथियोंके रक्त रूपी जल प्रवाहमें पड़े हुए और उसे तैरनेके लिये आतुर हुए योद्धाओंसे जो भयानक युद्ध हो रहा हो उसमें दुर्जय शत्रु पक्षको आपके चरणकमल रूप वनका आश्रय लेनेवाले पुरुष जीतते हैं।

४३ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवाणं।

मंत्र—ॐ नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी जिनशासनसेवा कारिणी क्षुद्रोपद्रवविनाशिनी धर्मशान्तिकारिणी नमः कुरु कुरु स्वाहा।

फल – ऋद्धि मन्त्रकी आराधना और यन्त्र पूजनसे सब प्रकार का भय मिटता है और राजा द्वारा धन लाभ होता है।

राजा गुणवर्माकी कथा।

—:o:※:o:—

भारतवर्षमें मथुरा नगर प्रसिद्ध है किसी समय वहां राजा रणकेतु राज्य करते थे। ये थे तो राजा, परन्तु धर्म और नीतिका उन्हें कुछ भी ज्ञान न था। एक दिन उनकी स्त्रीने कहा कि आपका छोटा भाई गुणवर्मा आपसे द्वेष भाव रखता है। आप तो इस तरफ कुछ ध्यान नहीं देते, पर वह अस्तीनका सांप है, कभी न कभी आपको डंस लेगा अर्थात् आपका राज छुड़ा लेगा।

यद्यपि गुणवर्मा बड़ा सुशील और जिनभक्त था, ज्येष्ठ भाईका बड़ा आज्ञाकारी और जिनभक्त था, श्रुत कीर्ति मुनिराजके समीप विद्याभ्यास करने और श्रीभक्तामरजी आदि मन्त्र शास्त्रोंकी क्रियाएं सीखनेमें उसका समय जाता था, राज्य की ओर उसका ध्यान भी न था। परन्तु राजा रणकेतुके हृदयमें उनकी मूर्ख रानीके कहनेसे ऐसी समा गई कि उणहें गुणवर्मा सा भाई भी शत्रु रूप भासने लगा और वे उसे घरसे निकाल-

नेकी चिन्तामें रहने लगे। एक दिन वे अपने मन्त्रीसे कहने लगे कि आप गुणवर्माको देश निकाला दे दें, ऐसा किये विना मुझे विश्राम नहीं है। राजा रणकेतुकी ऐसी ओछी बात सुनकर मन्त्रीजी बड़े विस्मित हुए और राजासे कहने लगे।

चौपाई।

भाई भिन्न न कीजे राय। भाई विना सकल पत जाय॥
भाई विना अकेलौ होय। वाकी वात न माने कोय॥१॥
भाई विना होय रनहार। ज्यों जुग फूटें मारिय सार॥
जित तित घेर लेय सब कोय। भुजा कटें ज्यों दुर्गति होय॥२॥
रामचन्द्र लछमन दो वीर। दो मिलि बांध्यौ सागर नीर॥
दोऊ मिलि लंका गढ़ लियौ। राज विभीषणको सब दियौ॥३॥
जो दोऊ होते नहिं वीर। एक कहा सो बांधे धीर॥
रावण काढ़ विभीषण दियो। राज्य खोय जग अपजस लियो॥४॥
एक एक ग्यारह हो जाहिं। यह कहवत सबरे जग माहिं॥
तातें तुम जिन ऐसी करौ। मेरो मन्त्र हियेमें धरो॥५॥

अभिप्राय यह कि मन्त्रीने राजाको बहुतेरा समझाया परन्तु राजाके मनमें एक भी न भाया, वे उलटे मन्त्रीपर नाराज हो पड़े। अन्तमें राजाने गुणवर्मासे कह दिया कि, हमारे देशसे निकल जाओ, राजाको इतना कहते देर हुई थी परन्तु

गुणवर्माको घर छोड़नेमें देर नहीं लगी, वे इनके क्षेत्रसे दूर वनकी गुफामें निवास करने लगे।

एक दिन राजाने अपने नौकरों द्वारा गुणवर्मा की खबर मंगाई तो उन्होंने समाचार दिया कि वे वनमें रहते हैं और एकान्तमें भगवद्भजन करते हैं। यह सुनकर राजाने और ही कल्पना की वह यह कि, मेरे मार डालनेको कोई जादू टोना सिद्ध कर रहा है इसलिये वे उसे मार डालनेके लिये बड़ी भारी सेना लेकर वहां गये। जब गुणवर्माने सजी हुई सेना राजा रणकेतुकी देखी तो उन्होंने ४२ और ४३ वें जुगल काव्यकी आराधना की जिससे चक्रेसुरी देवीने प्रगट होकर कहा कि तेरे मनमें जो इच्छा हो सो कह।

चौपाई।

गुणवर्मा भाषै सुन माय। दीजे सेना मोहु बनाय॥
एक बार भाई से लड़ों। ता पीछे संजम आदरौं॥१॥

तब तो देवीने चतुरंगिणी* सेना सज दी। दोनों ओरसे रणभेरी बजने लगी, खूब घोर युद्ध हुआ और विक्रियाके बलसे राजा रणकेतुको बांध लिया। निदान गुणवर्माने देवीसे प्रार्थना की कि

---

* हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे।

ये मेरे ज्येष्ठ भ्रात हैं इनका अनादर नहीं होना चाहिये। देवी रनकेतुको छोड़कर निजधामको चली गई और रनकेतु पश्चाताप करते राजस्थान को चले गये, विद्वान गुणवर्माने जिन दीक्षा ली और आयुके अन्तमें समाधिमरण करके स्वर्गको गये।

——

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र-
पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ।
रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति।४४।

भावार्थ—हे जिनराज! आपका स्मरण करनेवाले पुरुषोंके बड़े बड़े मगर मच्छ और भयंकर बड़वानलसे क्षुभित समुद्रमें पड़े हुए जहाज पार हो जाते हैं।

४४ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमीयसवाणं।

मंत्र - ॐ नमो रावणाय, विभीषणाय कुंभकरणाय लंकाधिपतये महाबलपराक्रमाय मनश्चिंतितं कुरु कुरु स्वाहा।

फल ऋद्धि मन्त्रकी आराधनासे और पासमें यन्त्र रखनेसे आपत्ति मिटती है, समुद्रमें तूफानका भय नहीं होता समुद्र पार कर लिया जाता है।

सेठ तामलिप्तकी कथा।

अपने भरतखण्डके दक्षिण प्रान्तमें जैन धर्मका अच्छा प्रचार है वहां किसी समय तामली नगरमें तामलिप्त नामके एक सेठ रहते थे जैन धर्ममें उनकी अच्छी रुचि थी और चन्द्रकीर्ति मुनिराजके पास भक्तामर काव्य मन्त्रोंका अध्ययन किया करते थे।

एक दिन उन्होंने विदेश जानेकी तैयारी की और बहुतसा माल जहाजमें भरा कर बहुतसी वणिक मण्डलीके साथ रवाना हो गये। वे सब पवित्र जैन धर्मके धारक थे पंच परमेष्ठी और णमोकार मन्त्रका स्मरण करते हुए सकुशल मनोवांछित स्थानपर पहुंच गए. धर्मके प्रसादसे कोई विघ्न नहीं आया। यहांसे जो वस्तुएं वे ले गए थे वहां बेंच दी और वहांसे बहुतसे हीरा जवाहिरात खरीद कर जहाज भर लिया।

इन लोगोंको इस वाणिज्यमें इतना विशाल लाभ हुआ कि फूले नहीं समाते थे। परन्तु उस परिग्रहमें इतने मस्त हो गये कि, जिन पूजन

भजनमें उपेक्षा करने लगे और पंच नमस्कारका स्मरण तो बिलकुल छोड़ दिया था। धन संचय की चरचा करते और जहाज खेवते हुए आ रहे थे कि एक जलबासिनी देवीने इनका जहाज थांभ दिया। केवटियों और वणिक मंडलीने बहुत प्रयत्न किये परन्तु जहाज जरा भी नहीं हिला। मल्लाहोंने कहा कि जल देवीका कोप हुआ दिखता है दो चार पशुओंकी बलि देनेका प्रबन्ध करना चाहिये। यह सुनकर सेठ तामलिप्तने साफ उत्तर दिया कि मैं ऐसा कदापि न करने दूंगा, जो कुछ भविष्यमें होगा सो होगा, परन्तु प्राणीबधके मैं सर्वथा विरुद्ध हूँ।

संसारी जीव सुखसातामें चाहे ईश्वरको भूल जावें परन्तु विपत्तिमें उन्हें प्रायः प्रभुका ही स्मरण होता है। अतः सेठ तामलिप्तजीने अपने सहचारी वर्गसे णमोकार मन्त्रका जाप, स्मरण करनेको कहा और आप 'अम्भोनिधौ' आदि भक्तामर काव्यका जाप करने लग गये। १०८ बार जाप किया ही था कि चक्रेश्वरी देवीने प्रगट होकर कहा।

चौपाई।

कहौ सेठ संकट है कौन। हमको वेग बतावहु तौन॥

भावार्थ—हे जिनराज ! भयानक जलोदर रोगसे जो कुबड़े हो गये हैं और शोचनीय अवस्थाको प्राप्त होकर जीवनकी आशा छोड़ बैठे हैं ऐसे मनुष्य, आपके चरण कमलके रज रूप अमृतसे अपनी देह लिप्त करके कामदेवके समान सुन्दर रूपवाले हो जाते हैं।

४५ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाणं ।

मंत्र—ॐ नमो भगवती क्षुद्रोपद्रवशान्तिकारिणी रोगकष्टज्वरोपशमनं शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

फल—ऋद्धि मंत्रकी आराधनासे और यंत्र पास रखनेसे महानसे महान भय मिटता है, प्रताप प्रकट होता है, रोग नष्ट होता है और उपसर्ग आदिका भय नहीं रहता।

दोहा ।

अब वंदों चक्रेसुरी, देवी मन वचकाय ।
ज्यों प्रसन्न सबको भई, त्यों मम होहु सहाय ॥१॥

राजपुत्र हंसराजकी कथा ।

मालवा प्रान्तमें उज्जैन नगर बहुत मनोहर और विस्तृत है। वहां किसी समय राजा नृपशेखर राज्य करते थे। उन्हें रानी विमलमतीके शुभ संयोगसे एक पुत्र रत्नकी प्राप्ति हुई। बालक जन्महीसे बहुत रूपवान और सुशील था, नाम उसका हंसराज था। जब प्रिय हंसराज सात

घरसका हुआ तो पिताने पण्डित मनोहरदासजी की सेवामें विद्याध्ययनके लिये सौंपा और विद्वान पुरोहितजीने बड़े चावसे इसे विद्याभ्यास कराया।

गीतिका।

सूत्र शास्त्र सिद्धान्त ज्योतिष, सकल याहि पढ़ाई है।
व्याकरण अमर निघंटु पिंगल, छन्द बद्ध सिखाई है॥
वाण मोचन पर बचावन रन भिरन जोधन तनी।
जल तरन पर के मन हरन सो दई विद्या अति घनी॥१॥

बालक हंसराज विद्यामें सम्पन्न होकर घर आया ही था कि दैव योगसे उसकी पूज्य माता विमलमतीका स्वर्गवास हो गया। इस वियोगसे पिता पुत्र दोनों अत्यन्त दुखी हो गये। बहुत रोये, बहुत आर्त ध्यान किया। निदान राजा नृपशेखरने अपना दूसरा विवाह कर लिया।

राजाकी इस नव्य भार्याका नाम कमला था, परन्तु यह पूर्व स्त्री विमलाके सदृश नहीं थी, यह बड़ी कुटिल स्वभाव और निर्दय थी। समय पाकर कमला रानीने भी श्रीचन्द्र नामका पुत्र प्रसव किया। राजाने योग्य होनेपर श्रीचन्द्रको भी विद्याध्ययन कराया। परन्तु कमलाके हृदयमें बड़ा ही द्वैत भाव रहता था वह यही सोचा करती

थी कि यदि हंसराज मर जाता तो बड़ा कंटक टल जाता।

एक समय राजा नृपशेखर तो दिग्विजय को निकले और प्रिय पुत्र हंसराजको कमला रानी के भरोसे छोड़ गये। तब तो रानी कमलाको अपने मनकी बात पूरी करनेका अच्छा अवसर हाथ लग गया। उसने भोजनमें दिनाई मिलाकर हंसराजको खिला दिया जिससे स्वल्पकालहीमें हंसराजका शरीर पीला पड़ गया। रग रगमें जहर का असर हो जानेसे वे नितान्त अशक्त हो गये और वात, कफ, खांसीसे पीड़ित रहने लगे। यद्यपि राजकुमार अपनी विमाताकी यह करतूति समझ गये पर उससे वे कह भी क्या सकते थे और उससे लाभ भी क्या था? निदान वे कुटिला कमलाके कुसंगमें रहना उचित न समझकर घरसे निकल पड़े और बड़े कष्ट सहते सहते कठिनाईसे नागपुर* पहुंचे।

वहांके राजा मानगिरिके यहां कलावती नाम की एक कन्या बहुत सुशिक्षित और रूपवान थी। एक दिन राजाने पुत्रीसे पूछा कि हे बेटी! तुम

* आजकल मध्यप्रदेशकी राजधानी है।

हमारे घरमें सुख चैन करती हो, सो हमारे प्रसाद से करती हो या अपने भाग्यसे ? तिसपर बुद्धि-मती कलावतीने उत्तर दिया कि.

चौपाई ।

काहूको कोउ समरथ नांह । देनेको इह पृथिवी मांह ।
जैसो करम कियो जो होय । तैसो फल निपजावे सोय ॥१॥

कलावतीके इस साफ उत्तरपर वे बहुत कुपित हुए उनने मन्त्रियोंके द्वारा अतिरोगी हंस-राजको बुलवाकर उसके साथ सुकुमारी कलावती का विवाह कर दिया, और दोनोंको घरसे निकाल दिया । वे उभय दम्पति वनमें विचरते विचरते एक दिगम्बर मुनिराजके पास गये और उनसे रोगमुक्त होनेका उपाय पूछा । कृपालु मुनिराजने हंसराजको "उद्भूत भीषण" आदि ४५ वां काव्य सिखा दिया, उन्होंने सात दिन तक योगासन बैठकर मंत्रकी आराधना की जिसके प्रसादसे वे बिलकुल निरोग और कामदेव सदृश रूपवान हो गये ।

दिग्विजय करके जब उज्जैन नरेश महाराज नृपशेखर वापिस आये तो कमला रानीसे पूछा कि प्रिय हंसराज कहां है ? कमलाने उत्तर दिया

कि आपने उसका विवाह नहीं किया था सो किसी कुलटाको लेकर कहीं चला गया है। राजा नृपशेखरने जहां तहां हंसराजकी खोज करनेके लिये किंकर भेजे, उनमेंसे एक मनुष्य यह समाचार लाया कि वे नागपुरके एक बगीचेमें हैं और एक स्वरूपवती स्त्री उनके पास है। यह सुनकर कमला रानीका चित्त फूल गया और मंत्रीको नगापुर भेजा। यहां नागपुर नरेश मानगिरको खबर लगी कि हंसराजजी निरोग हो गये हैं और वे राजपुत्र हैं तब ये उनसे मिलने आये और कलावतीसे क्षमा प्रार्थना की। निदान राजा मानगिरने बड़े सन्मान से उन्हें विदा कर दिया। जब हंसराजजी उज्जैन पहुंचे तब राजा नृपशेखरको अपनी स्त्रीकी क्रिया ज्ञात हुई, इससे उन्हें बड़ा वैराग्य आया वे प्रिय हंसराजको राज्य भार सौंप कर मुनि हो गये और आयुके अन्तमें स्वर्गको गये।

आपादकण्ठमुरुशृङ्खलवेष्टिताङ्गा
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजंघाः।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति॥४६॥

भावार्थ—हे जिनेश! जिनके शरीर पांवसे लेकर गले तक वड़ी वड़ी सांकलोंसे जकड़े हुए हैं और विकट वेड़ियोंकी धारोंसे जिनकी जंघाएं अत्यन्त छिल गई हैं ऐसे मनुष्य आपके नाम-मंत्र का स्मरण करनेसे अपने आप वंधन मुक्त हो जाते हैं।

४६ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाणं।

मंत्र—ॐ णमो ह्रां ह्रीं श्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः ठः ठः जः जः क्षां क्षीं क्षूं क्षः क्षयः स्वाहा।

विधि—ऋद्धि मंत्र जपने और यंत्र पास रखने तथा उसकी त्रिकाल पूजा करनेसे कैदखानेसे छुटकारा होता है, राजा वगैरहका भय नहीं होता। विधान-प्रतिदिन १०८ वार जाप करना चाहिये।

राजपुत्र रत्नपालकी कथा।

आर्यावर्तके प्रसिद्ध नगर अजमेरमें किसी समय राजा उरपाल राज्य करते थे वे बड़े न्याय-शील और धर्मात्मा थे। पुण्योदयसे उन्हें पुत्र रत्नकी प्राप्ति हुई, उसका नाम उन्होंने रत्नपाल

रक्खा था। राजा उरपालने प्रिय रनपालकी शिक्षा पर अच्छा ध्यान दिया था उन्हें दिगम्बर जैन मुनिराजकी सेवामें भेज दिया था और सकल जैन-शास्त्र तथा भक्तामर मंत्र यंत्रका खूब अध्ययन कराया था।

एक समय अजमेरके समीपवर्ती राजा वास-पुर नरेशने पत्र द्वारा सूचना दी कि जोगिनपुरका बादशाह सुलतान आप पर चढ़ाई किया चाहता है आप शीघ्र ही युद्धकी तैयारी करें। यह समा-चार बांच कर राजा उरपाल बड़े ही क्रोधित हुए और राज सभामें घोषणा की कि, क्या अपने यहां कोई ऐसा शूरवीर है? जो सुलतानशाहको जीवित पकड़ कर लावे। यह सुनकर राजकुमार रनपालने भुजा उठा कर उत्तर दिया कि इस सहजसे कामके लिये आपका यह दास तत्पर है। प्रिय रनपालका ऐसा साहस देखकर अजमेर नरेश बहुत प्रसन्न हुए और जोगिनपुर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी।

कुमार रनपाल बड़ी भारी तैयारीसे सुलतान शाहपर चढ़े और दोनों तरफकी सेनाका घोर संग्राम हुआ। अंतमें शाह सुलतानने कुंवर

रनपालको पकड़ लिया और जेलखानेमें कैद कर दिया। उन्हें कठिन बेड़ियोंसे जकड़ दिया और और भोजन पान बन्द करके खूब तकलीफ दी। इस प्रकार कष्ट भोगते जब दो दिन दो रात बीत गये तब तीसरी रात्रिको कुंवर रनपालने 'आपादकंठ' आदि ४६ वें भक्तामर काव्यका स्मरण किया तब तत्काल ही देवी प्रगट हो गई और बंधन खुल गये। फिर क्या था सवेरा होते ही कुमार रनपाल दरबारमें जा पहुंचे।

इन्हें दरबारमें आया देख शाह सुलतानने जेल दारोगा और सिपाहियोंको खूब डांट सुनाई और पूछा कि इन्हें किसने छोड़ दिया है और किसके हुकुमसे छोड़ा है? उन्होंने विस्मित होकर उत्तर दिया जहांपनाह! यह तो कोई चमत्कारी दिखता है, नहीं तो किसकी ताकत है जो हुजूर की परवानगीके बाहिर कदम रख सके। तब सुलतानने स्वयम् अपने हाथसे कुमार रनपालको खूब कसकर बांधा और जेलखानेमें सख्तीसे बन्द कर दिया।

जब रात्रिके १२ बजेका घण्टा बजा कि रन-पालने पुनः काव्य मन्त्रका स्मरण किया जिससे

सब बंधन खुल गये। वे एक पलंगपर लेट गये और दो देवियां दासियोंकी नाई उनकी सेवा करने लगीं। यह हाल सिपाहियोंने सुलतानशाह को एक झरोखेमेंसे साफ दिखा दिया। तब तो वह बहुत घबराया, और उन्हें राज्य सभामें बुलाया और बहुत सेवा सुश्रूषा की। निदान बार बार क्षमा प्रार्थना करके बड़े सन्मानके साथ उन्हें अजमेरमें पहुंचा दिया। कुमार रनपालने अजमेर पहुंचकर सब वृत्तांत पिताको सुनाया जिसे सुनकर उन्हें पहिले तो विषाद और पीछे हर्ष हुआ। उनने पवित्र जैन धर्मकी बड़ी प्रशंसा की और अपना श्रद्धान और भी दृढ़ किया।

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-
संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम्।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते॥४७॥

भावार्थ—हे प्रभु! जो विद्वान् मनुष्य आपके इस स्तोत्रको अध्ययन करता है उसके मत्त हाथी, सिंह, अग्नि, सर्प, संग्राम, समुद्र, महोदर रोग और बंधन आदिसे उत्पन्न हुआ भय मानों डरकर ही शीघ्र नष्ट हो जाता है।

४७ ऋद्धि ॐ ह्रीं णमो अर्हं वड्ढमाणाणं।

मंत्र—ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रं ह्रः क्षय श्रीं ह्रीं फट् स्वाहा।

विधि—१०८ वार मंत्रकी आराधना कर शत्रुपर चढ़ाई करने वालेको विजय लक्ष्मी प्राप्त होती है। शत्रु वश होता है शत्रुके शस्त्रों की धार बेकाम हो जाती है बन्दूककी गोली बरछी आदिके घाव नहीं हो पाते।

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः॥४८॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र! मेरे द्वारा भक्ति पूर्वक अपने गुणोंकी गूंथी हुई सुन्दर अक्षरों* की विचित्र पुष्पमालाको जो पुरुष कंठमें धारण करता है उस माननीय पुरुषको धन सम्पत्ति वा स्वर्गमोक्ष आदि लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होती है।

४८ ऋद्धि ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वसाहूणं।

मंत्र—महति महावीर वड्ढमाण बुद्धिरिसीणं ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा झ्रौं झ्रौं स्वाहा।' ॐ नमो बंभचारिणे अट्ठारह सहस्स सीलांग रथ धारिणे नमः स्वाहा।

---

* अ इ उ आदि अक्षरोंकी।

विधि—४६ दिन तक प्रतिदिन १०८ वार जपनेसे और यंत्र पास रखनेसे मनोवाञ्छित कार्यकी सिद्धि होती है और जिसे अपने आधीन करना हो उसका नाम चिंतवन करनेसे वह अपने वश होता है।

श्रीमहामुनि मानतुंग स्वामीकी कथा।

चौपाई।

सो अड़तीसम जानो तेह। मान तुङ्ग मुनिकी भई जेह॥
सव सो रचित पीठिका कही। कथा आदि अंत गहगहीं॥१॥
काव्य सितालिस अठतालीस। सोई मन्त्र जपे मुनि ईस॥
तिन प्रसाद सव वंधन खुले। नाना विधिके संकट टले॥२॥
भोज सभा जीती सव जाय। श्री जिनवरके मंत्र सहाय॥
ते ही जुगल मन्त्र प्रधान। सो तुम जपो भव्य गुणखान॥३॥

अथ कवि प्रार्थना।

जैसो भाव ग्रन्थमें लहो। सो भावार्थ निकारो यहो॥
भूल चूक मेरी जो होय। ताहि सुधारो भविजन लोय॥१॥

स्व० कविवर पंडित विनोदीलालजीका परिचय

—:○○○◯○○○:—

चौपाई।

जाके राज परम सुख पाय। करी कथा हम जिन गुनगाय॥
साहजादपुर शहर मंझार। रहे सदा तिनके आधार॥१॥
काष्टा संघ आदि जिन तनों। माथुर गच्छ उजागर घनों॥
पुष्कर गन गन गणमें सार। जैन धरमको परम सिंगार॥२॥
कुमर सेन मुनिके आम्नाय। प्रगटो श्रावक धर्म सहाय॥
वैश्य वंशमें उत्तम महा। जैन धरम करुणामय लहा॥३॥
ता परसाद महा गम्भीर। अगरवार गुण अंग सुधीर॥
गरग गोत्र उत्तम गुनसार। अष्टादश गोतन सरदार॥४॥
अनख चूल है मेरी अल्ल। अनख मोहि लागे ज्यों शल्य॥
मिथ्यामत को नाशन हार। प्रगटो कुलको परम सिंगार॥५॥
मण्डन को परपोता भलो। पारस पोताको जस चलो॥
दरिगह मलको सुत गुनधाम। लाल विनोदी मेरो नाम॥६॥
संवत सत्रह सौ सैंताल। सावन सुद दुतिया रविवार॥
शुभ दिन कथा संपूरन करी। प्रथम जिनेंद्र तनो गुनभरी॥७॥

॥ समाप्त ॥

जरूरी सूचना ।

ऊपर लिखी विधियोंमेंसे जिस विधिमें वस्त्र, आसन और मालाका प्रकार नहीं बतलाया है उसे नीचे भांति समझें—

'वशीकरण'—मंत्रके साधनेमें वस्त्र, माला और आसन पीला लेना चाहिये ।

'मारन'—में वस्त्र, आसन और माला काली चाहिये ।

'लक्ष्मी-प्राप्ति'—के मंत्र-साधनमें माला मोती की और वस्त्र सफेद चाहिये ।

'मोहन'—में माला मूंगाकी और वस्त्र लाल चाहिये ।

'आकर्षण'—में वस्त्र हरा और माला हरी लेना चाहिये ।

जिस विधिमें दिशा न बताई गई हो उसका विधान करते समय मुख पूरबको करके बैठे ।

यंत्र भोजपत्र पर अनारकी कलम द्वारा केशर से लिखना चाहिये । —सम्पादक ।